

प्रतिवेद्य

भारत का उच्चतम न्यायालय
दाण्डिक अपीलीय अधिकारिता

दाण्डिक अपील क्रमांक 116/2011

गोवर्धन व एक अन्य

...अपीलार्थीगण

विरुद्ध

छत्तीसगढ़ राज्य

...प्रत्यर्थी

निर्णय

नोंम्मीकापम कोटिश्चर सिंह, न्यायाधिपति

1. यह अपील छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर के युगलपीठ द्वारा दाण्डिक अपील क्रमांक 290/2002 में दिनांक 30.11.2009 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसमें उच्च न्यायालय ने भारतीय दण्ड संहिता (एतस्मिन् पश्चात् जिसे 'भा.द.सं.' कहा जाएगा) की धारा 302 की सहपठित धारा 34 के अधीन वर्तमान दोनों अपीलार्थीगण पर अधिरोपित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश को यथावत रखा तथा तृतीय अभियुक्त की दोषसिद्धि को अपास्त किया एवं इस प्रकार, उसे दोषमुक्त किया।
2. चूँकि दोनों अपीलार्थीगण दोनों न्यायालयों, सत्र न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के समवर्ती निष्कर्षों को पलटने की मांग कर रहे हैं, इस न्यायालय को बहुत सावधानीपूर्वक कदम उठाना होगा जैसा कि इस न्यायालय ने मेकला सिवैया विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य (2022) 8 एससीसी 253 सहित अनेक प्रकरणों में व्यक्त किया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब तक कि निष्कर्ष विकृत न हों और महत्वपूर्ण साक्ष्य की अनदेखी में प्रतिपादित न किए हों, इस न्यायालय को समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने में धैर्यवान होना चाहिए। इस प्रकार, मेकला सिवैया (पूर्वोक्त) में निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

“15. न्यायिक निर्णय द्वारा यह सुस्थापित है कि अनुच्छेद 136 व्यापक शब्दों में लिखा गया है और उक्त अनुच्छेद के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियाँ किसी भी तकनीकी बाधा से आबद्ध नहीं हैं। यद्यपि, इस अधिभावी और असाधारण शक्ति का प्रयोग संयम से और केवल न्याय के प्रयोजन को आगे बढ़ाने के लिए किया जाना चाहिए। इस प्रकार, जब अपीलाधीन निर्णय के परिणामस्वरूप साक्ष्य की किसी त्रुटि या दोषपूर्ण व्याख्या या महत्वपूर्ण साक्ष्य की अनदेखी के कारण गंभीर न्याय-हत्या हुई हो, तो इस न्यायालय को न केवल सशक्त बनाया गया है, बल्कि न्याय के प्रयोजन को बढ़ावा देने के लिए हस्तक्षेप करने की भी अपेक्षा की जाती है।

16. इस न्यायालय की यह प्रथा नहीं है कि वह इस प्रयोजन से साक्ष्यों का पुनर्विवेचन करे कि क्या विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा एक साथ निकाले गए तथ्यात्मक निष्कर्ष युक्तियुक्त हैं या नहीं। केवल दुर्लभ और असाधारण प्रकरणों में ही, जहाँ कोई स्पष्ट अवैधता हो या महत्वपूर्ण साक्ष्य के त्रुटिपूर्ण रीति से पठन या अनदेखा करने के कारण न्याय की गंभीर हत्या हुई हो, यह न्यायालय ऐसे तथ्यात्मक निष्कर्ष में हस्तक्षेप करेगा।

उपरोक्त प्रकरण में, इस न्यायालय ने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के एक आदेश के विरुद्ध एक दायित्विक अपील पर विचार करते हुए, सत्र न्यायालय द्वारा अभियुक्त की दोषसिद्धि को यथावत रखा, तथा दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने से अस्वीकार कर दिया।

3. उपरोक्त सिद्धांत को विचार में रखते हुए, यह न्यायालय वर्तमान अपील पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ेगा ताकि यह जाँच की जा सके कि क्या कोई स्पष्ट त्रुटि या अवैधता है और क्या वर्तमान प्रकरण में महत्वपूर्ण साक्ष्यों का त्रुटिपूर्ण रीति से पठन या अनदेखा करने के कारण न्याय का कोई गंभीर हत्या हुई है। इसके लिए अनिवार्य रूप से प्रकरण के तथ्यों और संदर्भ की उपयुक्त परीक्षण की आवश्यकता होगी, जिसके लिए हमें प्रकरण के पृष्ठभूमि तथ्यों और प्रस्तुत साक्ष्यों पर पुनर्विचार करना होगा।

4. यह विचार करने योग्य है कि चूँकि राज्य ने तृतीय अभियुक्त, चिंताराम, जो दोनों अपीलार्थीगण के पिता हैं, को दोषमुक्त किए जाने के विरुद्ध कोई अपील प्रस्तुत नहीं की है, इसलिए हम तृतीय अभियुक्त

चिंताराम की प्रारंभिक दोषसिद्धि और तत्पश्चात दोषमुक्ति से संबंधित साक्ष्यों पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं कर सकते, सिवाय उन साक्ष्यों के जिनका प्रभाव वर्तमान दोनों अपीलार्थीगण पर पड़ सकता है।

5. अभियोजन का प्रकरण संक्षिप्त में यह है कि दिनांक 23.09.2001 को, सुबह लगभग 7:00 बजे, शिकायतकर्ता, संतोष कुमार मंडले (अ.सा.-6), जो मृतक के माता-पिता, शत्रुघ्न शर्मा (अ.सा.-5) और लता बाई (अ.सा.-10) के यहाँ काम करता था, मृतक सूरज के घर पर बर्तन धोते समय, सूरज द्वारा बचाव की आवाज सुनी। आवाज सुनकर, वह घर से बाहर आया और देखा कि तीन अभियुक्त गोवर्धन, राजेंद्र और चिंताराम सूरज पर टंगिया और लोहे के पाइप से हमला कर रहे थे। चिंताराम भी मृतक को लातों और घूँसों से मार रहा था और अपने दोनों पुत्रों, गोवर्धन और राजेंद्र, जो वर्तमान अपीलार्थी हैं, को सूरज को मारने के लिए उकसा रहा था। संतोष (अ.सा.-6) ने तत्काल शत्रुघ्न शर्मा (अ.सा.-5) और श्रीमती लता बाई (अ.सा.-10) को घटना की सूचना दी। संतोष ने चिंताराम और सूरज के मध्य पिछली रात गांजा को लेकर हुए झगड़े का भी उल्लेख किया।

6. इसके तदोपरान्त, संतोष द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई, जो उसी दिन अर्थात् दिनांक 23.09.2001 को सुबह लगभग 7.30 बजे भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307 के अधीन प्र.पी./12 के माध्यम से पंजीबद्ध किया गया।

7. आहत सूरज को यथाशीघ्र स्थानीय अस्पताल ले जाया गया एवं चिकित्सक डॉ. जी.आर. अग्रवाल (अ.सा.-1) द्वारा उसका परीक्षण किया गया। जिन्होंने मृतक के शरीर पर नौ चोटें पाईं, जो निम्नानुसार थीं:

i) रक्तस्राव सहित 6 सेमी x 5 सेमी का एक निलांगुर, और दाहिने कपाल भाग के नीचे की हड्डी का अस्थिभंग।

ii) दाहिने कान के ठीक ऊपर 1/2 सेमी x 1/2 सेमी x त्वचा की गहराई पर एक कटा हुआ घाव।

iii) पश्चकपाल भाग पर 5 सेमी x 1 सेमी x त्वचा की गहराई पर एक कटा हुआ घाव।

iv) ललाट भाग पर 4 सेमी x 1 सेमी x त्वचा की गहराई पर एक कटा हुआ घाव।

v) चोट क्रमांक 3 से 10 सेमी दूर 4 सेमी x 1 सेमी x त्वचा की गहराई पर एक कटा हुआ घाव।

vi) दाहिने हाथ पर 7 सेमी x 3 सेमी x त्वचा की गहराई पर एक फटा हुआ घाव।

vii) बाएँ हाथ पर 2 सेमी x 1/2 सेमी x त्वचा की गहराई पर एक कटा हुआ घाव।

viii) दाएँ हाथ पर 3 सेमी x 2 सेमी x त्वचा की गहराई पर एक फटा हुआ घाव।

ix) दाहिनी कोहनी पर 3 सेमी x 2 सेमी x त्वचा की गहराई पर एक फटा हुआ घाव।
चोट के ऊपर से रक्तस्राव हो रहा था ।

चोटों की गंभीरता को विचार में रखते हुए, पीड़ित को चिकित्सा महाविद्यालय अस्पताल, रायपुर रेफर किया गया एवं तत्पश्चात, एमएमआई अस्पताल स्थानांतरित कर दिया गया, जहाँ दिनांक 25.09.2001 को रात लगभग 9.22 बजे उसकी मृत्यु हो गई। मृत्यु का कारण चोटों के कारण कोमा बताया गया था और मृत्यु को मानववध माना गया था। तत्पश्चात, प्रथम सूचना रिपोर्ट में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन प्रकरण जोड़ा गया। विवेचना अधिकारी द्वारा आवश्यक अन्वेषण प्रारंभ किया गया।

8. गोवर्धन द्वारा दिए गए प्रकटीकरण कथन के आधार पर, अपीलार्थी क्रमांक 1, उसी दिन 23.9.2001 को, उसकी निशानदेही पर उसके पिता के कमरे से दो रक्तरंजित टंगिया बरामद की गई, जो प्र.पी/6 है। अपीलार्थी क्रमांक 2 राजेंद्र ने भी दिनांक 23.9.2001 को लगभग 3.45 बजे लोहे के पाइप प्र. पी/4 के संबंध में एक प्रकटीकरण कथन दिया और इसे उसके पिता के कमरे से प्र. पी/5 के माध्यम से बरामद किया गया। घटनास्थल से रक्त रंजित मिट्टी तथा सादी मिट्टी बरामद प्र.पी./7 के माध्यम से बरामद किए गए। शत्रुघ्न शर्मा (अ.सा.-5) से रक्त रंजित वस्त्र प्र.पी./10 के माध्यम से बरामद किए गए। पटवारी (अ.सा.-8) द्वारा प्र.पी/16 के माध्यम से नजरी नक्शा तैयार किया गया, जैसा कि संतोष (अ.सा.-6), कन्हैया (अ.सा.-11) और शैलू (अ.सा.-2) द्वारा देखा गया था। गोवर्धन और राजेंद्र को दिनांक 23.9.2001 को प्र.पी./23 व प्र.पी./24 के माध्यम से गिरफ्तार किया गया। जब्त वस्तुओं का परीक्षण डॉ. जी.आर. अग्रवाल (अ.सा.-1) द्वारा प्र.पी/2 के माध्यम से किया गया। जब्त की गई वस्तुओं को चिकित्सीय परीक्षण हेतु प्रेषित किया गया। गोवर्धन की निशानदेही पर बरामद दो टंगियाँ और राजेंद्र की निशानदेही पर बरामद लोहे के पाइप पर रक्त की उपस्थिति की पुष्टि प्र.पी/30 द्वारा की गई। विवेचना

अधिकारी (विवेचना अधिकारी) ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन साक्षियों के कथन दर्ज किए।

9. अभियुक्तों के अपराध को साबित करने हेतु, अभियोजन ने 15 साक्षियों का परीक्षण कराया। अभियुक्तों के कथन भी धारा 313 के अधीन दर्ज किए गए, जहाँ उन्होंने अपने विरुद्ध प्रतीत परिस्थितियों को अस्वीकार किया एवं प्रश्नगत अपराध में झूठे फँसाए जाने का अभिवाक करते हुए स्वयं को निर्दोष बताया। अभियुक्तों ने बचाव पक्ष के दो साक्षी, रामलाल यादव (ब.सा.-1) और लखन लाल साहू (ब.सा.-2) भी किए थे, ताकि यह साबित किया जा सके कि पुलिस ने मृतक सूरज की माँ, लता बाई (अ.सा.-10) पर अभियुक्तों के विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए दबाव डाला था।

10. द्वितीय अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश रायपुर के न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने तथा अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों के विवेचना के उपरांत, तीनों अभियुक्तों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 सहपठित धारा 34 के अधीन दोषसिद्ध किया और प्रत्येक अभियुक्त को दिनांक 06.03.2002 के निर्णय के अनुसार उन्हें आजीवन कठोर कारावास एवं ₹10,000 के अर्थदण्ड, अर्थदण्ड के संदाय के व्यतिक्रम पर 3 वर्ष के अतिरिक्त कठोर कारावास के दण्ड से दण्डित किया।

11. तीनों अभियुक्तों द्वारा प्रस्तुत वैधानिक अपील में, उच्च न्यायालय ने वर्तमान दो अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि की पुष्टि की जबकि तृतीय अभियुक्त चिताराम को दिनांक 30.11.2009 के आक्षेपित निर्णय द्वारा दोषमुक्त कर दिया।

12. उच्च न्यायालय के समक्ष, अपीलार्थीगण ने विभिन्न अभिवचन प्रस्तुत किए, जिनमें यह भी शामिल था कि दोषसिद्धि ठोस साक्ष्यों पर आधारित नहीं थी, लता बाई (अ.सा.-10) का एकमात्र चक्षुदर्शी साक्षी कथन असंपुष्ट और पूर्णतः अविश्वसनीय था क्योंकि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन उसका प्रारंभिक कथन, घटना के 5 दिवस उपरांत विलम्ब से दर्ज किया गया था और शेष समस्त गैर-आधिकारिक साक्षी पक्षद्रोही हो गए थे, जिनमें शिकायतकर्ता (अ.सा.-10) और मृतक के पिता (अ.सा.-5) सम्मिलित थे, जिन्हें अभियोजन द्वारा चक्षुदर्शी साक्षी बताया गया था, एवं जब्ती साक्षी भी।

13. दूसरी ओर, अभियोजन की ओर से उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि मृतक की माँ, लता बाई (अ.सा.-10) के अभिसाक्ष्य पर केवल इसलिए अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है क्योंकि उनका कथन विलम्ब से दर्ज किया गया था क्योंकि उनका नाम संतोष (अ.सा.-6) द्वारा पंजीबद्ध कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज है, जो घटना के आधे घंटे के भीतर दर्ज कराई गई थी

और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराना पक्षद्रोही साक्षी संतोष (अ.सा.-6) के साक्ष्य से साबित हुआ था, और अन्य संपुष्टिकारी साक्ष्य भी मौजूद थे। अभियोजन ने उत्तर प्रदेश राज्य विरुद्ध सतीश, (2005) 3 एससीसी 114 में पारित इस न्यायालय के निर्णय का भी अवलंब लिया और तर्क किया कि यदि प्रशंसनीय और ग्राह्य स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए जाते हैं तो साक्षियों के परीक्षण में हुआ विलम्ब नुकसानदायक नहीं होगा।

14. उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों का विस्तृत विश्लेषण करने के उपरांत, अपीलार्थीगण के तर्कों को खारिज कर दिया और उन्हें दोषसिद्ध किया जबकि अभियुक्त क्रमांक 3, उनके पिता चिंताराम को अपराध में उनकी संलिप्तता के बारे में संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त कर दिया।

15. इस प्रकार, हमारे समक्ष दोनों अपीलार्थीगण उच्च न्यायालय द्वारा पारित उस निर्णय पर आपत्ति कर रहे हैं जिसमें उनकी दोषसिद्धि को यथावत रखा गया है।

16. हमारे समक्ष अपीलार्थीगण के तर्क संक्षिप्त में निम्नानुसार हैं:

(i) चूँकि तृतीय अभियुक्त चिंताराम, जो दोनों अपीलार्थीगण के पिता हैं, को उच्च न्यायालय द्वारा उन्हीं साक्ष्यों के आधार पर दोषमुक्त किया गया था जिन पर दोनों अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया गया था, अतः दोनों अपीलार्थीगण को भी समानता के आधार पर दोषमुक्त किया जाना चाहिए था क्योंकि तीनों अभियुक्तों के साक्ष्यों की प्रकृति और गुणवत्ता में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

(ii) अन्यथा भी, एकमात्र चक्षुदर्शी साक्षी, जो एक हितबद्ध साक्षी भी है, अर्थात् मृतक की माँ, लता बाई (अ.सा.-10) के असंपुष्ट अभिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि यथावत नहीं रखा जा सकता था।

(iii) सत्र न्यायालय ने अपीलार्थीगण को मुख्यतः कथित चक्षुदर्शी साक्षी लता बाई (अ.सा.-10) के अभिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया था, यद्यपि वह चक्षुदर्शी साक्षी नहीं हो सकती थी, क्योंकि संतोष (अ.सा.-6) ने अपनी प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लेख किया था कि उसने घटना के विषय में सूरज के माता-पिता को सूचित किया था, जिससे ज्ञात होता है कि लता बाई (अ.सा.-10) को घटना के घटित होने के उपरांत ही घटना के विषय में ज्ञात हुआ और इसलिए, वह घटना नहीं देख पायी थी।

(iv) इसके अतिरिक्त, लता बाई (अ.सा.-10) का कथन घटना के 5 दिवस उपरांत दर्ज किया गया था और अभियोजन ने संहिता की धारा 161 के अधीन उसका कथन दर्ज करने में हुए विलम्ब का स्पष्टीकरण नहीं दिया है और उपयुक्त स्पष्टीकरण के अभाव में, उसका कथन विश्वसनीय नहीं है, जिसके संबंध में बचाव पक्ष ने **उड़ीसा राज्य विरुद्ध ब्रह्मानंद नंदा, (1976) 4 एससीसी 288** में पारित इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया, जिसमें इस न्यायालय ने अवधारित किया था कि डेढ़ दिवस तक अभियुक्तों के नाम न बताना नुकसानदायक है।

(v) यह भी तर्क किया गया कि अभियोजन के अनुसार, मृतक की माँ (अ.सा.-10) और पिता (अ.सा.-5) मौजूद थे परंतु उन्होंने हस्तक्षेप करने या पीड़ित को बचाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने घटना नहीं देखी थी और इसलिए लता बाई का कथन बेहद संदिग्ध है। इस संबंध में, बचाव पक्ष ने **पंजाब राज्य विरुद्ध सुच्चा सिंह, (2003) 3 एससीसी 153** में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया, जिसमें इस न्यायालय ने यह अवधारित किया था कि कोई भी पिता, जो घटनास्थल पर उपस्थित होने का दावा कर रहा हो, मूकदर्शक नहीं बना रहेगा जब उसके पुत्र को उसके समक्ष चौबीस चोटें पहुँचाई जा रही हों।

(vi) यह भी तर्क किया गया कि लता बाई (अ.सा.-10) के अभिसाक्ष्य में सुधार किए गए हैं और अतिशयोक्तियाँ हैं, जिससे उसका साक्ष्य अविश्वसनीय हो जाता है।

(vii) अपीलार्थीगण ने यह भी तर्क किया है कि माँ को छोड़कर लगभग सभी गैर-आधिकारिक अभियोजन साक्षी, पक्षद्रोही हो गए थे और उन्होंने अभियोजन के प्रकरण का समर्थन नहीं किया था, जिसमें सूचनाकर्ता और जब्ती साक्षी संतोष (अ.सा.-6), अ.सा.-2 और अ.सा.-12 सम्मिलित थे।

17. दूसरी ओर, हमारे समक्ष भी अभियोजन की ओर से यह तर्क किया गया है कि जहाँ तक दोनों अपीलार्थीगण का संबंध है, यह कहा जा सकता है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष ग्राह्य व सुसंगत साक्ष्यों पर आधारित है और इस प्रकार उनकी दोषसिद्धि को किसी भी अवैधता से ग्रसित नहीं कहा जा सकता है, और चूँकि दोनों विचारण न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष में कोई विकृति नहीं है, अतः इस न्यायालय को उच्च न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

इस न्यायालय द्वारा विश्लेषण

18. किसी अपराध के घटित होने की स्थिति में, जांच एजेंसी द्वारा अन्वेषण पूर्ण होने पर, अभियुक्तों को विचारण का सामना करने हेतु न्यायालय लाया जाता है। हमारे दाण्डिक न्यायशास्त्र के अंतर्गत, न्यायालय सामान्य तौर पर जांच एजेंसी द्वारा अन्वेषण के दौरान एकत्रित साक्ष्यों से अवगत नहीं होती है। अन्वेषण पूर्ण होने के उपरांत, विचारण न्यायालय के समक्ष जांच एजेंसी द्वारा अभियुक्तों के विरुद्ध एकत्रित साक्ष्यों, जिनमें दस्तावेजी एवं मौखिक दोनों सम्मिलित हैं, का एक समूह प्रस्तुत किया जाता है, जिनका न्यायालय द्वारा युक्तियुक्त निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए एकत्रित और विश्लेषण किया जाना आवश्यक होता है। अभियोजन, एकत्रित साक्ष्यों के आधार पर, अभियुक्त को अपराध के घटित होने से जोड़ते हुए, न्यायालय के समक्ष अपराध की घटना को क्रमवार पुनः प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। अभियोजन द्वारा न्यायालय के समक्ष अपराध का ऐसा पुनः प्रस्तुतीकरण, साक्ष्यों को एक पहेली की तरह एक साथ रखने के समान है, जिसमें अपराध की पूरी तस्वीर बनाने के लिए सभी सुसंगत साक्ष्यों को एक साथ रखा जाता है। न्यायालय की मुख्य जिम्मेदारी यह देखना है कि क्या अभियोजन द्वारा इस पहेली को ठीक से प्रस्तुत किया गया है जिससे घटना के घटित होने की स्पष्ट तस्वीर उभरती है और अभियुक्त की भूमिका भी इस पहेली के एक भाग के रूप में निर्धारित होती है। तत्पश्चात् ही, अपराध को अंजाम देने में अभियुक्त की भूमिका उचित रूप से स्थापित और सिद्ध की जा सकती है और तदनुसार, अभियुक्त पर दाण्डिक दायित्व अधिरोपित किया जा सकता है।

19. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3 के अनुसार, किसी तथ्य को तब सिद्ध कहा जा सकता है जब, अपने समक्ष प्रस्तुत प्रकरणों पर विचार करने के उपरांत, न्यायालय या तो यह मानता है कि वह अस्तित्व में है या उसके अस्तित्व को इतना संभाव्य मानता है कि किसी विवेकशील व्यक्ति को, उस विशेष प्रकरण की परिस्थितियों में, इस धारणा पर कार्य करना चाहिए कि वह अस्तित्व में है। न्यायालय यह परीक्षण करने का कार्य करता है कि आरोपित तथ्य जिनमें अभियुक्त द्वारा आरोपित विशेष दाण्डिक कृत्य भी सम्मिलित हैं, सिद्ध हैं या नहीं।

20. यह भी विचार करने योग्य है कि विधि साक्ष्यों को पूर्णतः एक साथ जोड़ने पर विचार नहीं करता, क्योंकि किसी दाण्डिक प्रकरण में साक्ष्य का मानक सभी संदेहों से परे साक्ष्य नहीं, बल्कि केवल युक्तियुक्त संदेह से परे साक्ष्य होता है। दूसरे शब्दों में, यदि सभी साक्ष्यों को एक साथ जोड़ने पर एक स्पष्ट तस्वीर उभरती है जो अपराध को अंजाम देने में अभियुक्त की भूमिका के विषय में युक्तियुक्त संदेह से परे संकेत देती है, तो न्यायालय अभियुक्त को दाण्डिक रूप से उत्तरदायी मानती

है और उसे दंड संहिता के प्रावधानों के अधीन दण्डित करती है, जो कि सिविल कार्यवाही के प्रकरण में संभावनाओं की प्रबलता पर आधारित साक्ष्य की आवश्यकता के विपरीत है।

21. इस समय, यह विमर्श करना सुसंगत होगा कि "युक्तियुक्त संदेह" का क्या अभिप्रेत है। इसका अभिप्रेत है कि ऐसा संदेह परिकल्पित अटकलों से मुक्त होना चाहिए। यह सूक्ष्म भावनात्मक विवरण का परिणाम नहीं होना चाहिए, और संदेह वास्तविक और महत्वपूर्ण होना चाहिए, न कि केवल अस्पष्ट आशंका। एक युक्तियुक्त संदेह कोई काल्पनिक, गौण या केवल संभावित संदेह नहीं है, बल्कि तर्क और व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित एक युक्तियुक्त संदेह है, जैसा कि **रमाकांत राय विरुद्ध मदन राय**, (2003) 12 एससीसी 395 में अभिनिर्धारित किया गया है, जिसमें निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

“24. संदेह तभी युक्तियुक्त कहलाएँगे जब वे अमूर्त अटकलों के अभिरुचि से मुक्त हों। विधि का सत्य के अतिरिक्त कोई और प्रीतिपात्र नहीं हो सकता। युक्तियुक्त संदेह की स्थापना हेतु, उसे अत्यधिक भावनात्मक प्रतिक्रिया से मुक्त होना चाहिए। संदेह वास्तविक और सारभूत होने चाहिए, जैसे कि अभियुक्तों के अपराध के बारे में संदेह, जो साक्ष्य से या उसके अभाव से प्रोद्भूत होते हैं, न कि केवल अस्पष्ट आशंकाओं से। एक युक्तियुक्त संदेह कोई काल्पनिक, गौण या केवल संभावित संदेह नहीं है; बल्कि तर्क और व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित एक युक्तियुक्त संदेह है। यह इस प्रकरण के साक्ष्य से उत्पन्न होना चाहिए।”

22. युक्तियुक्त संदेह से परे साक्ष्य के इस सिद्धांत को लागू करते समय न्यायालय को सभी साक्ष्यों पर निष्पक्ष और युक्तियुक्त रीति से विचार करना होगा जैसा कि इस न्यायालय ने **हरियाणा राज्य विरुद्ध भागीरथ** (1999) 5 एससीसी 96 में निम्नानुसार अवधारित किया है:

“8. किसी भी दण्डिक विचारण में सभी घटकों को वैज्ञानिक परिशुद्धता के साथ साबित करना लगभग असंभव है। एक दण्डिक न्यायालय को अपराध के विषय में तभी आश्वस्त किया जा सकता है जब वह युक्तियुक्त संदेह की सीमा से परे हो। निःसंदेह, 'युक्तियुक्त संदेह' शब्द की कोई परिभाषा नहीं दी जा सकती। आधुनिक विचार इस दृष्टिकोण के पक्ष में है कि युक्तियुक्त संदेह से परे साक्ष्य वही साक्ष्य है जो न्यायाधीश को नैतिक निश्चितता प्रदान करता है।

9. संयुक्त राज्य अमेरिका में दाण्डिक विधि के एक प्रसिद्ध लेखक, फ्रांसिस व्हार्टन ने अपनी किताब व्हार्टन्स क्रिमिनल एविडेंस (पृष्ठ 31, खंड 1, 12 वें संस्करण) में न्यायिक निर्णयों के कुछ अंश निम्नानुसार उद्धृत किए हैं:

" युक्तियुक्त संदेह" वाक्यांश को परिभाषित करना कठिन है। यद्यपि, समस्त दाण्डिक प्रकरणों में इस शब्द की सावधानीपूर्वक व्याख्या की जानी चाहिए। प्रायः उद्धृत या अनुपालन की जाने वाली एक परिभाषा मुख्य न्यायाधिपति शॉ द्वारा वेबस्टर प्रकरण [कॉमनवेल्थ विरुद्ध वेबस्टर, 5 सीयूएसएच 295: 59 एमएएस 295 (1850)] में दी गई है। वह व्यक्त करते हैं: "यह केवल संभावित संदेह नहीं है, क्योंकि मानवीय प्रकरणों से संबंधित और नैतिक साक्ष्य पर निर्भर प्रत्येक वस्तु किसी न किसी संभावित या काल्पनिक संदेह के लिए खुली है। यह प्रकरण की वह स्थिति है, जो समग्र साक्ष्यों की तुलना और विचार करने के उपरांत, जूरी सदस्यों के मन में यह विचार छोड़ जाती है कि वे यह नहीं कह सकते कि उन्हें आरोप की सत्यता के बारे में नैतिक निश्चितता के प्रति दृढ़ विश्वास है।"

10. एच.सी. अंडरहिल द्वारा लिखित ग्रंथ द लॉ ऑफ क्रिमिनल एविडेंस में (पृष्ठ 34, खंड 1, 5 वें संस्करण पर) यह व्यक्त किया गया है:

'युक्तियुक्त संदेह ऐसा होना चाहिए जो एक ईमानदार, समझदार और निष्पक्ष व्यक्ति, तर्क के साथ, मन में ला सके जो सत्य को ज्ञात करने की विवेकशील आकांक्षा के अनुरूप हो। अपराध के बारे में निष्कपटपूर्ण किया गया संदेह एक युक्तियुक्त संदेह है। अभियुक्त की निर्दोषता की संभाव्यता का एक अस्पष्ट अटकल या अनुमान एक युक्तियुक्त संदेह नहीं है। एक युक्तियुक्त संदेह वह है जो निष्पक्ष और युक्तियुक्त रीति से सभी साक्ष्यों पर विचार करने से उत्पन्न होता है। सभी साक्ष्यों पर निष्पक्ष विचार होना चाहिए और यदि जूरी सदस्यों द्वारा इस निष्पक्ष विचार के उपरांत भी, अभियुक्त के अपराध के बारे में उनके मन में दृढ़ विश्वास बना रहता है, तो युक्तियुक्त संदेह के लिए कोई स्थान नहीं है।'

23. युक्तियुक्त संदेह की अवधारणा को भारतीय संदर्भ में भी समझा जाना चाहिए, सामाजिक सत्यता को विचार में रखते हुए और इस सिद्धांत को विधि के प्रति संदेहपूर्ण दृष्टिकोण उत्पन्न होने से बचाने के लिए एक युक्तियुक्त सीमा से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है, जैसा कि इस न्यायालय ने **शिवाजी साहेबराव बोबडे विरुद्ध महाराष्ट्र राज्य, (1973) 2 एससीसी 793** में निम्नानुसार अवधारित किया है:

“6. इस स्तर पर भी, हम स्वयं को दाण्डिक प्रकरणों में एक आवश्यक सामाजिक परिप्रेक्ष्य का स्मरण दिलाते हैं, जो अपर्याप्त न्यायालयिक विज्ञान विवेचना से ग्रसित है। सामाजिक सुरक्षा की कीमत पर संदेह के लाभ के नियम के प्रति अतिशयोक्तिपूर्ण समर्पण और इस सुखदायक भावना के जोखिम कि समस्त दोषमुक्ति सदैव उचित होता है, चाहे पीड़ित व समाज को न्याय मिले या नहीं, बढ़ते अपराध और अदण्डित बच जाना समकालीन संदर्भ में विशेष बल देने की मांग करते हैं। न्यायिक साधन की एक लोक दायित्व है। हमारे विधि के जाल में छिपे हुए युक्तियुक्त संदेह से परे साक्ष्य के अभिलाषित सिद्धांतों या सुनहरे धागे को, हर आशंका, संकोच और संदेह की मात्रा को गले लगाने के लिए रुग्णतापूर्वक नहीं खींचा जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण में परिलक्षित अत्यधिक चिंता कि हजार दोषी छुट जाए पर एक निर्दोष व्यक्ति को पीड़ा नहीं होनी चाहिए, मिथ्या दुविधा है। केवल युक्तियुक्त संदेह ही अभियुक्त के हैं। अन्यथा न्याय की कोई भी व्यावहारिक प्रणाली तब टूट जाएगी और समाज के मध्य विश्वसनीयता खो देगी। एक दोषी व्यक्ति को निश्चित होकर दोषमुक्त करने की बुराई को एक विद्वान लेखक [ग्लेनविले विलियम्स ने 'प्रूफ ऑफ गिल्ट' में] बुद्धिमत्तापूर्वक अवधारित किया है, यह इस साधारण तथ्य से कहीं आगे जाता है कि केवल एक दोषी व्यक्ति दण्डित नहीं हुआ है। यदि अयोग्य दोषमुक्त होना सामान्य हो जाता है, तो वे विधि की अवहेलना करने लगते हैं, और इसके परिणामस्वरूप अभियुक्त "व्यक्तियों" के विरुद्ध कठोर विधिक अनुमानों और दोषी पाए जाने वालों को अधिक कठोर दंड देने की सार्वजनिक मांग उत्पन्न होती है। इस प्रकार, दोषियों को बार-बार दोषमुक्त किए जाने से एक क्रूर दंडात्मक विधि बन सकता है, जो अंततः निर्दोष लोगों की न्यायिक सुरक्षा को कम कर सकता है। इन सभी कारणों से, विस्काउंट साइमन के साथ यह कहना उचित है कि "न्याय की विफलता दोषी व्यक्ति के दोषसिद्धि से कम नहीं हो सकती है..."।" संक्षिप्त में, कथित निर्दोषता के लिए हमारे न्यायशास्त्रीय अभिरुचि को व्यावहारिक दृष्टिकोण से नियंत्रित किया जाना चाहिए। दाण्डिक न्याय को सशक्त और यथार्थवादी बनाने की आवश्यकता है। अपराधी को मुक्त करने के लिए संभावनाओं को पर्याप्त मानने और सीमांत निर्दोषों को दण्डित करने के लिए प्रबल संभावना के तर्क को दरकिनार करने के मध्य संतुलन बनाना होगा। हमने साक्ष्यों का विश्लेषण करते समय और विचारण न्यायालयों द्वारा निकाले गए विपरीत निष्कर्षों की वैधता का विवेचन करते समय इन सावधानियों को अपनाया है। निश्चित रूप से, अंतिम विश्लेषण में युक्तियुक्त संदेह अपीलार्थी के पक्ष में ही कार्य करेंगे। भारत में विधि बहुत पहले से ही इसी आधार पर बनाया गया है।”

24. इसके अतिरिक्त, किसी विशेष प्रकरण में आवश्यक "साक्ष्य" की मानक स्थिति क्या होगी, इस पर भी रमाकांत राय (पूर्वोक्त) के उपरोक्त प्रकरण में निम्नानुसार विश्लेषण किया गया:

“23. निस्संदेह, किसी व्यक्ति को किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध न किए जाने का पूर्ण अधिकार है जो साक्ष्य के मानक द्वारा स्थापित नहीं है जो युक्तियुक्त संदेह से परे साक्ष्य के मानक द्वारा स्थापित नहीं है। यद्यपि यह मानक एक उच्चतर मानक है, फिर भी, कोई पूर्ण मानक नहीं है। किस हद तक संभावना "साक्ष्य" के समान है, यह प्रत्येक प्रकरण के लिए एक विशिष्ट अभ्यास है। संभाव्यता के "साक्ष्य" के समान होने का उल्लेख करना एक अभ्यास है, साक्ष्य की अन्योन्याश्रयता और एक साक्ष्य की दूसरे द्वारा पुष्टि, जैसा कि विद्वान लेखक व्यक्त करते हैं:[देखें मेथमेटिक्स ऑफ प्रुफ II: ग्लेनविले विलियम्स, दाण्डिक विधि पुर्नविलोकन, 1979, स्वीट और मैक्सवेल द्वारा, पृष्ठ 340 (342)]

“यदि साक्ष्य के अलग-अलग अंश आश्रित हों, तो सरल गुणन नियम लागू नहीं होता। दो घटनाएँ आश्रित होती हैं जब वे एक साथ घटित होती हैं, और ऐसी घटनाओं के साक्ष्य को भी आश्रित कहा जा सकता है। किसी दाण्डिक प्रकरण में, यह स्थापित करने के लिए निर्देशित साक्ष्य के विभिन्न अंश कि प्रत्यर्थी ने निषिद्ध कार्य निर्दिष्ट मानसिक स्थिति में किया था आम तौर पर आश्रित होते हैं। एक जूरी सदस्य को संदेह हो सकता है कि कथित स्वीकारोक्ति को स्वीकार किया जाए या नहीं, और इस तथ्य से दोषी का अनुमान लगाया जाए या नहीं कि प्रत्यर्थी न्याय से भाग गया था। परंतु चूँकि स्वीकारोक्ति आम तौर पर निर्दोष लोगों के बजाय दोषी होती है, और भाग जाने वाले निर्दोष लोगों के बजाय दोषी होती है, इसलिए दोनों संदेहों को एक साथ गुणा नहीं किया जाना चाहिए। साक्ष्य का एक अंश दूसरे की पुष्टि कर सकता है।”

24.

25. संभाव्यता की अवधारणाओं और उसकी स्थिति को गणितीय रूप से गणना की जाने वाली इकाइयों के रूप में स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता है कि ऐसी कितनी इकाइयाँ संदेह से परे साक्ष्य का निर्माण करती हैं। संभाव्यता की स्थिति और साक्ष्य की मात्रा के मूल्यांकन में एक स्पष्ट व्यक्तिपरक घटक है। अंतिम विश्लेषण में, फोरेंसिक संभाव्यता एक मजबूत व्यवहारिक ज्ञान और अंततः न्यायाधीश के प्रशिक्षित अंतर्ज्ञान पर आधारित होनी चाहिए। दाण्डिक प्रक्रिया द्वारा अभियुक्तों को दी गई सुरक्षा को कम नहीं किया जाना चाहिए, साथ ही, गौण तथ्यों को बिना जानकारी के वैध बनाना दाण्डिक न्याय प्रशासन का उपहास करेगा। इस स्थिति को न्यायमूर्ति वेंकटचलैया (जैसा कि उस समय माननीय न्यायाधिपति थे) ने उत्तर प्रदेश राज्य विरुद्ध कृष्ण गोपाल [(1988) 4 एससीसी 302: 1988 एससीसी (क्रि) 928: एआईआर 1988 एससी 2154] में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था।।”

25. इस बिंदु पर, लॉर्ड डेनिंग, जे. द्वारा मिलर विरुद्ध मिलर ऑफ पेंशनस (1947) 2 ऑल ईआर 372, 373 एच में की गई टिप्पणी का उल्लेख करना भी सुसंगत होगा:

"यह सुस्थापित स्थिति है। इसमें निश्चितता तक पहुँचने की आवश्यकता नहीं है, किंतु इसमें उच्च स्तर की संभावना होनी चाहिए। युक्तियुक्त संदेह से परे साक्ष्य का अर्थ संदेह की छाया से परे साक्ष्य नहीं है। यदि विधि न्यायालय को विचलित करने की काल्पनिक संभावनाओं को स्वीकार करता है, तो वह समुदाय की रक्षा करने में विफल रहेगा..."

26. इस प्रकार, दाण्डिक विचारणों में विधि की आवश्यकता प्रकरण को सभी संदेहों से परे साबित करना नहीं, बल्कि युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करना है और ऐसा संदेह काल्पनिक, मनगढ़ंत, गौण या केवल एक संभावित संदेह नहीं हो सकता, बल्कि तर्क और व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित एक युक्तियुक्त संदेह हो सकता है। अतः वर्तमान प्रकरण में, यदि अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोप युक्तियुक्त संदेह से परे साबित होते हैं, तो निश्चित रूप से दोषसिद्धि को अवैध नहीं कहा जा सकता।

27. वर्तमान प्रकरण में, जहाँ तक मृतक की मृत्यु का संबंध है, इस बारे में कोई विवाद नहीं है। अपीलार्थीगण ने अभियोजन के इस तर्क का विरोध नहीं किया है कि मृतक की मृत्यु धारदार हथियारों से लगी गंभीर चोटों के कारण हुई। उनका अभिवचन यह है कि उन्हें मृत्यु की जानकारी नहीं थी और यह भी कि वे दूसरे गाँव में थे। ऐसे में, मृतक को लगी चोटों की प्रकृति, जिसका वर्णन निर्णय के पहले भाग में किया जा चुका है और चोट के कारण के बारे में विस्तारपूर्वक बताना हमारे लिए अनावश्यक हो सकता है, सिवाय एकमात्र चक्षुदर्शी साक्षी के साक्ष्य की पुष्टि के।

28. चूँकि अपीलार्थीगण का तर्क है कि गैर-आधिकारिक अभियोजन साक्षियों ने, एक को छोड़कर, अभियोजन के प्रकरण का समर्थन नहीं किया है, इसलिए हमारे लिए अभियोजन साक्षियों के साक्ष्यों और साक्ष्य पर पुनर्विचार करना और यह देखना आवश्यक होगा कि क्या विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा किए गए विवेचना में कोई महत्वपूर्ण अवैधता है।

29. इसके लिए, संतोष (अ.सा.-6) द्वारा प्रस्तुत शिकायत के साक्ष्य का विश्लेषण प्रारंभ करना उचित होगा, जिसने दाण्डिक प्रक्रिया प्रारंभ की और न्यायालय में उसका साक्ष्य, जिसमें उसने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 और प्रथम सूचना रिपोर्ट के अधीन अपीलार्थीगण के विरुद्ध किए गए अपने पूर्व अभियोगात्मक कथन से मुकर गया।

30. यद्यपि प्रथम सूचना रिपोर्ट कोई महत्वपूर्ण साक्ष्य नहीं है, विशेषतः जब शिकायतकर्ता, अर्थात् अ.सा.-6 ने प्रथम सूचना रिपोर्ट की सामग्री का पूर्णतः समर्थन नहीं किया, फिर भी, इसे पूर्णतः अनदेखा नहीं किया जा सकता और इसे एक सुसंगत परिस्थिति के रूप में माना जाना चाहिए यदि इसे अन्य अभियोजन के साक्षी, इस प्रकरण में अभियोजन साक्षी-14, थाना प्रभारी द्वारा साबित किया जाता है, जिसने शिकायतकर्ता द्वारा बताई गई रिपोर्ट प्रथम सूचना रिपोर्ट के रूप में दर्ज की थी।

इस संबंध में, हम इस न्यायालय के **बाबले विरुद्ध छत्तीसगढ़ राज्य, (2012) 11 एससीसी 181** के निर्णय का संदर्भ ले सकते हैं, जिसमें निम्नानुसार अवधारित किया:

“14. एक बार जब पुलिस द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना साबित हो जाता है और उसे न्यायालय द्वारा अभिलेख पर स्वीकार कर लिया जाता है और अभियोजन अन्य ग्राह्य, संपुष्ट और सुसंगत साक्ष्यों द्वारा अपने प्रकरण को युक्तियुक्त संदेह से परे स्थापित कर देता है, तो न्यायालय के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट के साक्ष्यिक मूल्य की अनदेखी करना अनुचित होगा। प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्र.पी.- 1, अ.सा. 10, उप-निरीक्षक, सुरेश भगत के कथन से विधिवत साबित हो गई है। उनके अनुसार, उन्होंने अ.सा. 1 के कथन पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की थी और उस पर उनके द्वारा विधिवत हस्ताक्षर किए गए थे। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और विधिवत रूप से थाना के अभिलेख का हिस्सा बन गई थी जिसे उसके कामकाज और जांच के सामान्य क्रम में बनाए रखा गया था। इस प्रकार, किसी भी प्रकरण में, यह विधि की एक स्थापित स्थिति है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट अपने आप में एक महत्वपूर्ण साक्ष्य नहीं है, किंतु यह निश्चित रूप से जांच एजेंसी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की एक सुसंगत परिस्थिति है। केवल इसलिए कि अ.सा. 1 पक्षद्रोही हो गया था, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रथम सूचना रिपोर्ट सुसंगतता खो देगी और किसी भी प्रयोजन के लिए इसकी जांच नहीं की जा सकेगी।”

31. वर्तमान प्रकरण में, अ.सा.-14, राम कृष्ण दुबे, जो उस समय नेवरा थाना के थाना प्रभारी थे, ने साक्ष्य दिया कि दिनांक 23.09.2001 को उन्होंने सूचनाकर्ता संतोष मंडले (अ.सा.-6) की मौखिक सूचना पर सुबह 7:30 बजे तीनों अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307 के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट क्रमांक 125/2001 दर्ज की और प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्र.पी.-12) और उनके हस्ताक्षर तथा प्र.पी.-6 के हस्ताक्षर, जो प्र.पी.-12 पर 'अ' से 'अ' अंकित थे, को साबित किया। अतः हमारे पास प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है, जो प्र.पी.-14, थाना प्रभारी के साक्ष्य से साबित होता है।

32. यह विचार करने योग्य है कि सूचक अ.सा.-6 ने अपनी साक्ष्य में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से इनकार नहीं किया, यद्यपि उसने अपनी साक्ष्य के दौरान प्रथम सूचना रिपोर्ट में अभियुक्तों के नामों का उल्लेख करने से इनकार किया। इन परिस्थितियों में, इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि उसके इनकार को उसकी शिकायत और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन किए गए उसके पूर्व कथन के विपरीत किस सीमा तक माना जा सकता है।

33. बेहतर समझ हेतु, संतोष, अ.सा.-6 के कथन के आधार पर दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट के सुसंगत अंश नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

“मैं शिक्षक कॉलोनी में शत्रुघ्न शर्मा के घर के पास रहता हूँ और उनके घर में बर्तन धोने का काम करता हूँ। यह घटना दिनांक 23.9.01 को सुबह लगभग 7 बजे हुई। हमेशा की तरह, जब मैं घर के बर्तन साफ़ कर रहा था, तो घर के बाहर से मुझे "मुझे बचाओ, मुझे बचाओ" की आवाज़ें सुनाई दीं और इस तरह सतर्क होकर, मैं अपने कार्यस्थल से बाहर आया और देखा कि गोवर्धन, राजेंद्र और उनके पिता चिंताराम साहू, पाइप, टंगिया आदि से सूरज पर हमला कर रहे थे। सूरज का शरीर रक्त रंजित था। गोवर्धन ने टंगिया से मारा, जबकि राजेंद्र ने पाइप से सूरज पर हमला किया। चिंताराम साहू सूरज को लात-घूंसें से मार रहा था और वह दूसरे हमलावरों को सूरज को पीटने के लिए उकसा रहा था। वे इस बीच पीड़ित को "वेश्या का पुत्र" कहकर गालियाँ दे रहे थे। मैंने तुरंत सूरज के माता-पिता को इसकी सूचना दी। उक्त घटना गुरु, भाऊ की माँ और आस-पड़ोस के निवासियों ने भी देखा है। पिछली रात 11 बजे, सूरज चिंताराम साहू के घर गया था कुछ गांजा के बीज माँगने के लिए, जहाँ उनका वहाँ भी झगड़ा हुआ था। जब चिंताराम ने उससे पूछा कि वह उसके घर गांजा खरीदने क्यों आया था। सुबह सूरज पर हुए हमले में, सूरज के सिर, दोनों हाथों और आँखों पर गंभीर चोटें आईं, जिनसे रक्तस्राव भी हुआ, जिससे सूरज बेहोश हो गया। जिसके बाद मैं आपको इस प्रकरण की सूचना दे रहा हूँ और आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप आवश्यक कार्रवाई करें।

34. उपर्युक्त शिकायत/प्रथम सूचना रिपोर्ट से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अभियोजन द्वारा अ.सा.-6 के रूप में परीक्षण किया गया सूचनाकर्ता एक चक्षुदर्शी साक्षी होगा। यद्यपि, विचारण के दौरान, वह पक्षद्रोही हो गया और अपने अभिसाक्ष्य में तीनों अभियुक्तों में से किसी का भी नाम न लेकर मुकर गया यद्यपि उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट में उन्हें हमलावर बताया था।

35. चूँकि अ.सा.-6, जिसे पक्षद्रोही घोषित किया गया था, विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत वास्तविक तस्वीर को समझने के लिए महत्वपूर्ण है, इसलिए निम्नलिखित अभिलेखों के अनुसार उसके सुसंगत अंशों को पुनः प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा:

“1. मैं इस न्यायालय में मेरे सामने उपस्थित अभियुक्त पक्ष के तीनों सदस्यों को जानता हूँ। उनमें से एक व्यक्ति का नाम मुझे चिताराम के रूप में पता है और अन्य दो उसके पुत्र हैं, किंतु मैं उनके नाम नहीं जानता। मैं साक्षर नहीं हूँ। मैं पिछले 2-2.5 सालों से शत्रुघ्न शर्मा के घर में रह रहा हूँ। मैं सूरज को जानता हूँ, वह मुझसे 1-2 साल बड़ा है। यह लगभग तीन माह पहले हुई एक घटना के बारे में है। उस दिन सुबह के लगभग 7 बजे थे। मैं उस समय बर्तन धोने में व्यस्त था। उस संबंधित घर में, जहाँ मैं बर्तन धो रहा था, जिसके निवासी 'पापा' शत्रुघ्न शर्मा, 'मम्मी' लता शर्मा और 'बहन' अंजू शर्मा हैं। जब मैं इस तरह उक्त घर के बर्तन धोने में व्यस्त था, तो उक्त घर के ये निवासी सो रहे थे। उसी समय, अचानक मुझे चीखें "मुझे बचाओ, मुझे बचाओ" सुनाई दीं, मैंने सोचा कि सूरज बाहर से आवाज़ लगा रहा है और मैं बाहर गया, परंतु वहाँ कोई मौजूद नहीं दिखा, किंतु सूरज भूमि पर सीधा पड़ा था। फिर मैं उसके पास गया और देखा कि वह बेहोश पड़ा था। उसकी कनपटी और सिर के पिछले हिस्से पर चोट के निशान थे और भूमि पर रक्त भी बिखरा हुआ था।

2. यह कहना उचित है कि मैंने प्रकरण की सूचना थाना में दर्ज कराई है और उसे वहाँ लिखित रूप में पंजीबद्ध भी करवाया है। मेरे द्वारा लिखवाई गई रिपोर्ट पर प्र.पी.-12 अंकित है। उक्त रिपोर्ट पर मेरे हस्ताक्षर 'अ से अ' हैं। पुलिस को बताई गई घटना उन्हें मेरे द्वारा देखी हुई बताई गई थी। पुलिस ने भी मेरा कथन दर्ज किया। यद्यपि मैं साक्षर नहीं हूँ, किंतु मुझे अपना हस्ताक्षर करना आता है। मुझे जो कुछ भी पता था, मैंने पुलिस को सूचित कर दिया है।”

(बल दिया गया)

विचारण न्यायालय के समक्ष उपरोक्त असंगत अभिसाक्ष्य के कारण, जिसमें उसने हमलावरों के रूप में किसी भी अभियुक्त/अपीलार्थी की उपस्थिति का उल्लेख करने में लोप किया था, अभियोजन द्वारा अ.सा.-6 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया।

36. हम प्रतिपरीक्षण के दौरान अ.सा.-6 के अभिसाक्ष्य के शेष भाग जैसा कि दर्ज किया गया है, को भी पुनः प्रस्तुत करेंगे जो उसके साक्ष्य की प्रकृति को दर्शाएगा, जो निम्नानुसार है:

“मेरी पुलिस रिपोर्ट के 'ख से ख' भाग में, प्र.पी.-12 में मैंने उन्हें यह नहीं बताया है कि “मैं बाहर आया और देखा कि ने उसे मार डाला”। मैंने अपनी उक्त रिपोर्ट में पुलिस को यह भी लिखवाया है कि उक्त घटना के भूरू बाई की माँ और आस-पड़ोस के निवासियों ने भी साक्षी हैं। अपने थाना में मैंने यह नहीं कथन किया है कि रात 11 बजे सूरज चिताराम के घर गांजा मांगने गया था जिसके बारे में चिताराम सूरज के घर आया और उससे झगड़ा किया। किंतु प्र.पी.-12 में, यदि 'ग से ग' भाग-“रात में, सूरज गांजा मांगने क्यों गया था” का उल्लेख पुलिस को नहीं किया गया है, तो मुझे प्र.पी.-12 में पुलिस द्वारा ऐसा उल्लेख करने का कारण नहीं पता है।

4. अपने पुलिस रिपोर्ट में, मैंने उन्हें यह नहीं बताया है कि जब मैं घर से बाहर गया तो मैंने देखा कि अभियुक्त पक्ष के लोग सूरज को पाइप और टंगिया से मार रहे थे। प्र.पी.-8 नजरी नक्शा पर भी मेरे हस्ताक्षर हैं। मैंने पटवारी को वह स्थान दिखाया है जहाँ सूरज लेटा हुआ मिला था। यह कहना उचित है कि सड़क के दोनों ओर शिक्षक कॉलोनी में घर हैं।

5. यह कहना उचित है कि शत्रुघ्न शर्मा, राम कुमार साहू, गोवर्धन साहू, रमेश कुमार वर्मा और प्रमिला पाण्डेय के घर एक-दूसरे से सटे हुए हैं। यह कहना भी उचित है कि ये सभी घर 30-40 फुट की परिधि में हैं। जिस स्थान मैं बर्तन धो रहा था और जहाँ पीड़ित सूरज गिरा था, उसके बीच की दूरी लगभग 30-35 फुट थी। यह कहना भी उचित है कि यदि कोई उसी स्थान से चिल्लाए जहाँ सूरज का शरीर पड़ा था, तो शत्रुघ्न शर्मा के घर पर 'आवाज़' सुनी जा सकती है। मेरे चिल्लाने के बाद, पड़ोसी जाग गए।

6. मेरे थाना के प्र.पी.-12 में, पुलिस ने सूरज के साथ मारपीट से संबंधित प्रकरण के बारे में कैसे लिखा, यह मुझे नहीं पता या मुझे यह भी नहीं पता कि उन्होंने ऐसा क्यों लिखा। पुलिस के समझाने पर, मैंने प्र.पी.-12 के 'अ से अ' भाग पर अपने हस्ताक्षर कर दिए। मैं साक्षर नहीं हूँ, फिर भी अपना हस्ताक्षर कर सकता हूँ। यह कहना अनुचित है कि मैंने पुलिस को जो कुछ भी बताया, वह उन्होंने ज्यों का त्यों दर्ज कर लिया। मैंने पुलिस को यह सूचित नहीं किया कि अभियुक्त पक्ष के सदस्यों ने सूरज पर हमला किया है। मैं पुलिस द्वारा प्र.पी.-12 में इस तरह लिखने का कोई कारण नहीं बता सकता सिवाय अपने हस्ताक्षर के क्योंकि मुझे नहीं पता कि उन्होंने इसमें क्या लिखा है। पुलिस द्वारा मुझे मेरी रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि जारी नहीं की गई है। पुलिस ने मेरी रिपोर्ट के घटक भी मुझे पढ़कर नहीं सुनाया है। मुझे बाद में ही ज्ञात हुआ कि सूरज का अभियुक्त पक्ष के सदस्यों के साथ झगड़ा हमारे गाँव में चल रही अफवाहों के कारण हुआ था। अभियुक्त पक्ष के सदस्य भी शत्रुघ्न शर्मा के

घर से बहुत कम दूरी पर रहते हैं। अभियुक्त चिंताराम कभी भी गांजा पीने के लिए शत्रुघ्न शर्मा के घर नहीं आया और न ही गया। सूरज के पास भी नहीं।

8. यह कहना अनुचित है कि अभियुक्तों को बचाने के लिए, मैं न्यायालय के समक्ष उचित ढंग से साक्ष्य नहीं दे रहा हूँ।

(बल दिया गया)

37. उपरोक्त से, अ.सा.-6 के साक्ष्य के निम्नलिखित महत्वपूर्ण पहलू सामने आते हैं:

(क) प्रतिपरीक्षण में अपने साक्ष्य के कण्डिका क्रमांक 2 में अ.सा.-6 ने स्पष्ट रूप से कथन किया है कि, यह कहना उचित है कि उसने प्रकरण की थाना में रिपोर्ट की थी और उसे वहाँ लिखित रूप में दर्ज भी करवाया था और इसे साबित भी किया था, जिसे प्र.पी./12 (प्रथम सूचना रिपोर्ट) के रूप में चिह्नित किया गया था। उसने प्र.पी./12 पर हस्ताक्षर को अपना माना और यह भी साक्ष्य दिया कि घटना पुलिस को उसके द्वारा देखी गई बताई गई थी। उसने यह भी कथन किया कि रिपोर्ट में उल्लेख किया गया था कि घटना को भूरी बाई और अन्य राहगीरों ने देखा था। इस प्रकार, अ.सा.-6 द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना सिद्ध हो जाता है, यद्यपि इसकी वास्तविक सामग्री के बारे में कुछ विवाद है।

(ख) यह भी विचार करने योग्य है कि पूछे जाने पर, अ.सा.-6 ने केवल यह कथन किया कि वह यह कारण नहीं बता सकता कि सूरज पर हमला करने के संबंध में कथन पुलिस द्वारा पूर्व अ.सा.-12 में उसके कथन में कैसे दर्ज किया गया और उसने यह भी कथन किया कि उसने अपीलार्थीगण द्वारा हमले का तथ्य नहीं बताया था। इससे यह स्पष्ट है कि उसने पुलिस द्वारा अपीलार्थीगण को प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामजद करके उन्हें झूठा फंसाने के लिए किसी भी तरह के दबाव या धमकी का आरोप नहीं लगाया, जैसा कि किसी अन्य साक्षी (अ.सा.-2) ने आरोप लगाया है। शैलू, अ.सा.-2, जिसे अभियोजन ने पूर्व अ.सा.-3 के जब्ती पत्रक साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया था, ने दावा किया था कि पुलिस ने उसे धमकाकर उसके हस्ताक्षर प्राप्त किए थे। जहाँ तक प्रथम सूचना रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने का प्रश्न है, उसने कथन किया कि उसे ऐसा करने के लिए राजी किया गया था। इस प्रकार, यदि पुलिस ने शिकायत पर हस्ताक्षर करने के लिए कथन किया है, तो पुलिस द्वारा कोई अनुचित कृत्य या दबाव का अनुमान नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि शिकायतकर्ता को थाना में उपस्थित होने पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता होती है। अंततः, यह धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन दर्ज किया गया कोई कथन नहीं है जिसके लिए हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पर सूचना देने वाले के हस्ताक्षर अपेक्षित होते हैं।

(ग) अ.सा.-6 यह भी कथन करता है कि यदि कोई उसी स्थान से चिल्लाता है जहाँ सूरज का शव पड़ा था, तो उसकी 'आवाज़' शत्रुघ्न शर्मा के घर पर सुनी जा सकती है और घटना वाले दिन जब वह चिल्लाया, तो पड़ोसी जाग गए। इससे ज्ञात होता है कि जब घटना हुई, तो लोग सतर्क हो गए थे। इसलिए, पीड़िता की माँ, लता बाई (अ.सा.-10), जो पहले से ही घर में मौजूद थी, का सतर्क हो जाना और घटना देखना बहुत स्वाभाविक था।

(घ) अ.सा.-6 ने यह भी कथन किया कि उसे बाद में ज्ञात हुआ कि गाँव में चल रही अफवाहों के कारण सूरज और अभियुक्त पक्ष के बीच झगड़ा हुआ था। उसने स्वीकार किया कि अभियुक्त मृतक के घर से बहुत कम दूरी पर रह रहे थे। यदि यह मान भी लिया जाए कि उसे हमलावरों की पहचान नहीं थी और गाँव में हुई बातचीत से उसे अभियुक्तों की संलिप्तता के बारे में ज्ञात हुआ, तो भी यह तथ्य कि अपीलार्थीगण के अतिरिक्त अन्य लोगों की संलिप्तता की कोई बात नहीं हुई, महत्वपूर्ण हो जाता है। यह तथ्य कि अपीलार्थीगण के अतिरिक्त अन्य लोगों की संलिप्तता की कोई चर्चा नहीं हुई, इस घटना के बारे में बहुत कुछ बताता है। इसके अतिरिक्त, गाँव से बचाव पक्ष का कोई साक्षी पेश नहीं किया गया, कि उस दिन अभियुक्तों की गाँव से अनुपस्थिति थी या घटना में उनकी संलिप्तता नहीं थी। ऐसा कोई साक्षी नहीं था जिसने स्पष्ट रूप से कहा हो कि अभियुक्त हमलावर नहीं थे। गैर-आधिकारिक अभियोजन साक्षियों ने केवल इस घटना के बारे में अनभिज्ञता का नाटक किया। यद्यपि, हम यह नहीं कह रहे हैं कि सिर्फ इसलिए कि अभियुक्त के बचाव में कोई भी साक्ष्य देने के लिए आगे नहीं आया, यह उनके विरुद्ध जाना चाहिए, क्योंकि आरोप साबित करने की जिम्मेदारी हमेशा अभियोजन पर होती है, न कि इसके विपरीत। यद्यपि, यह एक ऐसी स्थिति है जो लता बाई (अ.सा.-10) के चक्षुदर्शी साक्षी कथन की विश्वसनीयता को कम नहीं करती है या अभियोजन के प्रकरण को प्रभावित नहीं करती है।

(ङ) इस प्रकार, हमारे विचार में, प्रतिपरीक्षण के दौरान, भले ही अ.सा.-6 ने पुलिस को अपीलार्थीगण के नाम बताने से इनकार किया हो, यह मानना कठिन होगा कि उसने पुलिस को उनके नाम नहीं बताए जबकि उसने स्वयं कहा था कि उसने पुलिस को जो देखा उसकी सूचना दी और पुलिस ने उसे प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज कर लिया। हमें यह मानना कठिन प्रतीत होता है कि पुलिस ने घटना के इतने कम समय के भीतर अपीलार्थीगण को झूठा फंसाकर किसी तरह प्रथम सूचना रिपोर्ट में अपीलार्थीगण के नाम लिख दिया है। घटना सुबह लगभग 7 बजे हुई जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में बताया गया है और शिकायत घटना के आधे घंटे के भीतर सुबह 7:30 बजे दर्ज की गई जिसके आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। जाहिर है, गाँव में अपीलार्थीगण द्वारा हमले की भी चर्चा थी जैसा कि अ.सा.-6 ने भी कथन किया है।

38. उपर्युक्त विश्लेषण से, हमारे पास अभियोजन के प्रकरण की संपुष्टि के रूप में विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्र.पी./12) का अवलंब लेने पर प्रश्न उठाने का कोई कारण नहीं है।

39. जैसा कि ऊपर उक्त विश्लेषण किया गया है, चूँकि शिकायतकर्ता (अ.सा.-6), जिसने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की थी, को शुरू में चक्षुदर्शी साक्षी साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया गया था, परंतु बाद में विचारण के दौरान वह अपने कथन से पक्षद्रोही हो गई और केवल लता बाई (अ.सा.-10) ही चक्षुदर्शी साक्षी होने का दावा करती है, इसलिए लता बाई (अ.सा.-10) के साक्ष्य का परीक्षण करना आवश्यक होगा, क्योंकि अभियोजन का प्रकरण और सत्र न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि मुख्यतः उसके कथन पर आधारित है।

40. अ.सा.-10, लता बाई मृतक की माँ है, जो अभियोजन के अनुसार चक्षुदर्शी साक्षी थी। यदि यह स्थापित हो जाता है कि इस चक्षुदर्शी साक्षी के साक्ष्य विश्वसनीय है और विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तुत अन्य साक्ष्यों द्वारा इसकी संपुष्टि होती है, तो अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि को अवैध नहीं कहा जा सकता और इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होगी। दूसरी ओर, यदि उसका साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद नहीं पाया जाता जैसा कि अपीलार्थीगण की ओर से तर्क दिया गया है, तो वे निश्चित रूप से संदेह के लाभ के हकदार होंगे और विचारण न्यायालयों के निर्णय को पलटने का अधिकार प्रदान करेंगे। अतः अ.सा.-10 के साक्ष्य की अधिक विस्तारपूर्वक परीक्षण करना आवश्यक है।

41. अ.सा.-10, लता बाई ने साक्ष्य दिया कि उसने तीन अभियुक्तों को वर्तमान अपीलार्थीगण सहित, मृतक, उसके पुत्र पर, उस घटना के दिन जैसा कि नीचे वर्णित है, हमला करते हुए देखा था:

“मैं न्यायालय में मौजूद तीनों अभियुक्तों को पहचानती हूँ। बुजुर्ग का नाम चिंताराम है और उनके दोनों पुत्रों का नाम गोवर्धन और राजू है। अभियुक्त मेरे घर से कुछ दूरी पर रहते हैं। सूरज मेरा पुत्र था, वह घर में ही एक छोटी सी दुकान चलाता था। यह घटना रविवार, 23 सितंबर को सुबह 7:00 बजे की है। मैं झाड़ू लेकर दरवाजे के पास खड़ी थी और मेरे पति शत्रुघ्न शर्मा और बेटी अंजू शर्मा सो रहे थे। मेरा नौकर संतोष घर के दरवाजे के पास बर्तन साफ़ कर रहा था। संतोष और सूरज शौच के लिए बाहर गए और वहाँ से वापस आ गए। सूरज ने मुझे चाय बनाने को कहा, उसने कथन किया कि मैं वर्मा के घर से आ रहा हूँ। 5 मिनट बाद वर्मा का पुत्र मेरे घर आया और बताया कि सूरज भैया

पापा के साथ बैठे हैं और चिलम माँग रहे हैं, फिर लड़का चिलम लेकर चला गया। कुछ देर बाद वही लड़का चिलम लौटाने आया। फिर 10 मिनट बाद सूरज की आवाज़ सुनाई दी 'पापा'। मेरा नौकर संतोष घर के बाहर गया और परेशान होकर अंदर आया और बताया कि उन्होंने भाई सूरज को मार डाला है। मैं तुरंत झाड़ू लेकर बाहर आई, गोवर्धन, चिंता और राजू, तीनों मेरे पुत्र पर हमला कर रहे थे। चिंताराम पाइप से लैस था, एक अभियुक्त छोटी टंगिया और एक फरसे से लैस था। तीनों सूरज पर हमला कर रहे थे और वह भूमि पर पड़ा था। मैं अपने पति को पुकारते हुए घर के अंदर गई। मैंने अपने पति का हाथ खींचकर उन्हें जगाया कि उन्होंने सूरज को मार डाला है। जब मैं और मेरे पति सूरज के पास पहुँचे, तो तीनों अभियुक्त उस पर हमला करने के बाद भाग गए। तीनों अभियुक्त "मारो-मारो" कह रहे थे।

42. उसने यह भी बताया कि वह अपीलार्थीगण के घर प्रायः जाती थी, परंतु उसे अपने पति या पुत्र के साथ किसी भी झगड़े की जानकारी नहीं थी। उसने यह भी बताया कि उसके पति बाहर जाते ही डर गए थे और उन्होंने उसे थाना चलने को कहा और वह थाने चली गई। इसी बीच, अपीलार्थी राजेंद्र और गोवर्धन भी थाने आ गए और उन्हें देखकर उसने पुलिस को बताया कि इन दोनों ने उसके पुत्र की हत्या कर दी है और इन दोनों ने भी पुलिस को बताया कि वे सूरज की हत्या करके आए हैं। फिर पुलिस ने दोनों को थाने में अभिरक्षा में ले लिया। इसके बाद, पुलिस उसके साथ शिक्षक कॉलोनी वापस आई और पुलिस की सहायता से, वह तुरंत अपने आहत पुत्र को रिक्शे पर तिल्दा के शासकीय अस्पताल ले गई जहाँ उसका उपचार किया गया और बाद में उसे मेकाहारा के स्पेशलिटी हॉस्पिटल ले जाने की सलाह दी गई।

43. उसने यह भी साक्ष्य दिया कि जब सूरज सहायता के लिए चिल्लाया, तो वह बाहर आई और देखा कि उसके कई पड़ोसी पहले से ही घटनास्थल पर मौजूद थे, जैसे वर्मा, श्याम बाई, भूरी, भाऊ, गोवर्धन उर्फ भुरू, नीलू, कुमारी आदि वर्मा (अ.सा.-9) ने ही उसे उसके आहत पुत्र को तुरंत अस्पताल ले जाने की सलाह दी थी। फिर उसने कथन किया कि कैसे वह सूरज को उपचार के लिए शासकीय अस्पताल और फिर एमएमआई अस्पताल ले गई और वह उपचार के दौरान उसके मृत्यु तक उपस्थित रही। वह शव का पंचनामा तैयार करते समय भी उपस्थित थी।

44. चूँकि लता बाई (अ.सा.-10) ने हमले की चक्षुदर्शी साक्षी के रूप में साक्ष्य दिया था और घटना का विस्तृत विवरण दिया था, इसलिए बचाव पक्ष ने उसके साक्ष्य को अनुचित साबित करने के लिए उसका दीर्घ प्रतिपरीक्षण कराया। इसलिए, यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि उसके साक्ष्य का

गहनता से विश्लेषण किया जाए ताकि यह ज्ञात किया जा सके कि क्या वह विश्वसनीय और भरोसेमंद है, जिसे बचाव पक्ष ने इस रूप में प्रस्तुत करने का पुरजोर प्रयत्न किया है।

45. बचाव पक्ष के अधिवक्ता द्वारा यह स्थापित करने का निरंतर प्रयत्न किया गया कि अ.सा.-10 के मृतक पुत्र की आपराधिक पृष्ठभूमि थी, क्योंकि वह कई झगड़ों और गुंडागर्दी के कृत्यों में शामिल रहा था, जिसके कारण उसे कई लोगों की शत्रुता का सामना करना पड़ा, इस प्रकार यह सुझाव दिया गया कि वह अपने अन्य शत्रुओं के प्रतिशोध या बदले का शिकार हो सकता है, परंतु अपीलार्थीगण का नहीं।

46. अ.सा.-10 से प्रतिपरीक्षण के दौरान, यह स्पष्ट संकेत मिला कि मृतक का पिछले दिन एक अन्य पड़ोसी, वर्मा (अ.सा.-9) से झगड़ा हुआ था और वर्मा के परिवार ने ही मृतक पर वर्मा के घर के पास हमला किया था। हम उक्त वर्मा (अ.सा.-9) के साक्ष्य का बाद में उल्लेख करेंगे।

47. प्रतिपरीक्षण के दौरान अ.सा.-10 के कथन के निम्नलिखित पहलू विचार करने योग्य हैं।

(i) जब उनसे पूछा गया कि क्या पड़ोसियों ने भी उनके पुत्र की संकट भरी पुकार सुनी थी, तो उन्होंने कहा,

"मुझे यह भी यकीन नहीं है कि उन्होंने चिंताराम की उकसाने की आवाज़ें सुनी हैं या नहीं, जिसने कहा था, "इसे मारो! मार डालो इसे" क्योंकि मेरा ध्यान उस समय अपने पुत्र पर था जिसे पीटा जा रहा था, इसलिए मैं आस-पास किसी और ध्यान नहीं दे सकी। मैं बाहर भागी, उसे देखा, फिर वापस अंदर भागी और अपने पति को जगाया, जब मेरे पुत्र को पीटा जा रहा था, तब मैंने देखा कि वह पहले ही भूमि पर गिर चुका था और उसका चेहरा भी भूमि की ओर था।

(ii) उसने घटना पर अपने पति की विलम्ब से प्रतिक्रिया और अपने पति पर अपने गुस्से का जिक्र किया क्योंकि उसने बाहर आने के लिए कहने पर भी तुरंत प्रतिक्रिया नहीं दी और उसे "कुत्ता" कहकर गाली दी।

(iii) उसने कथन किया कि वह थाना भी गई थी और बताया था कि अभियुक्त गोवर्धन और राजेंद्र ने उसके पुत्र पर हमला किया था और जब वे थाना आए, तो उसने उनमें से एक को थाने में थप्पड़ मार दिया।

(iv) उसने यह भी कथन किया कि उसने पुलिस को यह नहीं बताया कि अभियुक्त पक्ष के पास पाइप, बसूला और टंगिया जैसे हथियार थे क्योंकि पुलिस ने उसे ये सब बताने का कोई मौका नहीं दिया और न ही उससे पूछताछ की। उसने यह भी कथन किया कि पुलिस ने उससे औपचारिक पूछताछ नहीं की क्योंकि वह सदमे की स्थिति में थी।

(v) दिलचस्प बात यह है कि जब प्रतिपरीक्षण के दौरान अपीलार्थीगण की ओर से यह सुझाव दिया गया कि पुलिस ने उन्हें थाने में बताया था कि रिपोर्ट बाद में दर्ज की जाएगी और उन्हें पहले घटनास्थल का दौरा करना चाहिए, तो उन्होंने इसे उचित माना।

(vi) वह दोहराती है कि उसने अपनी आँखों से अपीलार्थीगण को सूरज पर हमला करने के बाद घटनास्थल से भागते हुए देखा था।

(vii) वह स्वीकार करती है कि उसने न्यायालय कक्ष के बाहर सहायक पुलिस उप-निरीक्षक (अ.सा.-15) वैष्णव से मुलाकात की और बात की थी परंतु इस बात से इनकार किया कि वैष्णव ने उस पर दबाव डाला था कि वह उनके कहे अनुसार कथन दे कि उसने किसी को सूरज पर हमला करते नहीं देखा।

48. अपीलार्थीगण द्वारा लता बाई, अ.सा.-10 के साक्ष्य की सत्यता और विश्वसनीयता पर प्रश्न उठाने के आधार नीचे दिए जा सकते हैं: -

(क) उसका कथन दिनांक 23.09.2001 को घटित घटना के 5 दिवस उपरांत दिनांक 28.09.2001 को बहुत विलम्ब से दर्ज किया गया जिससे मनगढ़ंत कहानी गढ़ने की संभावना बनी।

(ख) पुलिस और न्यायालय के समक्ष दिए गए कथनों में महत्वपूर्ण विरोधाभास हैं।

(ग) अन्वेषण के दौरान दर्ज किए गए कथन की तुलना में न्यायालय के समक्ष उसके अभिसाक्ष्य में सुधार और अलंकरण हैं।

(घ) घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति संदिग्ध है क्योंकि वह एक हितबद्ध साक्षी है जिसका समर्थन उसके अपने पति (अ.सा. 5) द्वारा भी नहीं किया गया है जो घटना के समय उसके साथ रह रहा था।

(ड़) उसका अभिसाक्ष्य उसके पति के अभिसाक्ष्य के विपरीत है, जो घटना के समय घर में मौजूद था, और जिसने स्पष्ट रूप से अपीलार्थीगण को अपने पुत्र पर हमला करते नहीं देखा था।

(च) लता बाई का नाम शिकायत/प्रथम सूचना रिपोर्ट में चक्षुदर्शी साक्षी के रूप में नहीं दिया गया था, जिससे यह संकेत मिलता है कि वह चक्षुदर्शी साक्षी नहीं थीं।

49. यह व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है कि चक्षुदर्शी साक्षी होने के लिए, साक्षी घटना के समय घटनास्थल पर या दृश्यता की सीमा के भीतर उपस्थित होना चाहिए।

50. यदि हम अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य साक्ष्यों की आलोचनात्मक परीक्षण करें, तो यह नहीं कहा जा सकता कि लता बाई (अ.सा.-10) ने घटना नहीं देखी थी।

इसके लिए, हम सर्वप्रथम संतोष (अ.सा.-6) के साक्ष्य का संदर्भ देंगे। यद्यपि संतोष (अ.सा.-6) ने न्यायालय में अपने अभिसाक्ष्य के दौरान दावा किया था कि उसने हमलावरों को नहीं देखा था, फिर भी, प्रतिपरीक्षण में उसने विशेष रूप से कथन किया कि यह सत्य है कि घटना की सूचना उसने सूरज की माँ (अ.सा.-10) और पिता (अ.सा.-5) को तुरंत दे दी थी। इसलिए, घटनास्थल के पास लता बाई की मौजूदगी पर संदेह नहीं किया जा सकता। यह विचार करने योग्य है कि घटनास्थल के नजरी नक्शा (प्र.पी./16) में उल्लेख है कि पीड़िता का शव मृतक के घर के सामने वाली गली में लगभग 21 फीट की दूरी पर मिला था। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी ओर से घटना का चक्षुदर्शी साक्षी होना असंभव था। अ.सा.-10 एक संयोगवश साक्षी नहीं, बल्कि एक स्वाभाविक साक्षी है। वह घटनास्थल पर अचानक नहीं आई, जहाँ उसकी उपस्थिति की उम्मीद नहीं थी

यदि घटनास्थल पर लता बाई (अ.सा.-10) की उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है, तो अगला विचार यह होगा कि क्या उसने वह घटना देखी थी जब अपीलार्थीगण ने सूरज पर हमला किया था। इसलिए, महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या लता बाई अ.सा.-10 ने घटना देखी थी जैसा कि उसने दावा किया है, जिसे अपीलार्थीगण ने प्रश्नगत किया है।

51. इस महत्वपूर्ण पहलू का परीक्षण करते हुए, यह उचित होगा कि इस न्यायालय द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों को विचार में रखा जाए जो चक्षुदर्शी साक्षियों के कथनों में विसंगतियों से संबंधित हैं। **लीला राम (मृत) से दुली चंद विरुद्ध हरियाणा राज्य, (1999) 9 एससीसी 525** में निम्नानुसार अवधारित किया:

“9. यह विचार किया जाना चाहिए कि उच्च न्यायालय अपने अधिकारिता में प्रथम अपीलीय न्यायालय होने के नाते साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करता है, किंतु दो साक्षियों के प्रत्यक्ष विवरण में पाई गई विसंगतियाँ, जब तक कि वे बहुत महत्वपूर्ण न हों, साक्षियों के साक्ष्य की विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं कर सकतीं। विभिन्न साक्षियों के विवरणों के बीच कुछ विसंगतियाँ होना निश्चित है, और जब तक विरोधाभास महत्वपूर्ण स्तर के न हों, तब तक उनका उपयोग साक्ष्य को पूर्णतः खारिज करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। संयोग से, दार्ष्टिक प्रकरणों में गणितीय बारीकियों के साथ साक्ष्य की पुष्टि की अपेक्षा नहीं की जा सकती। साधारण अलंकरण हो सकता है, परंतु तर्क से भिन्नताएँ चक्षुदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को अविश्वसनीय नहीं बनानी चाहिए। साधारण विसंगतियों को अन्यथा ग्राह्य साक्ष्य को नष्ट नहीं करना चाहिए। इस संदर्भ में, उत्तर प्रदेश राज्य विरुद्ध एम.के. एंथनी [(1985) 1 एससीसी 505: 1985 एससीसी (क्रि) 105]। रिपोर्ट के पैरा 10 में, इस न्यायालय ने अवधारित किया: (एससीसी पृ. 514-15)

10. किसी साक्षी के साक्ष्य की विवेचना करते समय, दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि क्या साक्षी के साक्ष्य को समग्र रूप से पढ़ने पर उसमें सत्यता की झलक दिखाई देती है। एक बार जब यह धारणा बन जाती है, तो निस्संदेह यह आवश्यक है कि न्यायालय साक्ष्य की और अधिक जाँच करे विशेष रूप से साक्ष्य में बताई गई लोप, कमियों और दोषों को विचार में रखते हुए और उनका विवेचन करके यह पता लगाए कि क्या यह साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के विरुद्ध है और क्या साक्ष्य का पूर्व मूल्यांकन इस हद तक विकृत है कि वह विश्वास के योग्य न हो। प्रकरण के मूल को न छूने वाले गौण प्रकरणों पर अल्प विसंगतियाँ, यहाँ-वहाँ साक्ष्य से संदर्भ से हटकर दिए गए वाक्यों को लेकर अति-तकनीकी दृष्टिकोण, प्रकरण की जड़ तक न जाकर अनवेषण अधिकारी द्वारा की गई किसी तकनीकी त्रुटि को महत्व देना, सामान्यतः साक्ष्य को समग्र रूप से अस्वीकार करने की अनुमति नहीं देगा। यदि जिस न्यायालय के समक्ष साक्षी साक्ष्य देता है, उसे साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के बारे में राय बनाने का अवसर मिला था, तो अपीलीय न्यायालय, जिसे यह लाभ नहीं मिला था, को विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य की विवेचना को उचित महत्व देना होगा और जब तक कि कोई ठोस और महत्वपूर्ण कारण न हों, अल्प विवरणों में सामान्य भिन्नता या कमियों के आधार पर साक्ष्य को अस्वीकार करना उचित नहीं होगा। ईमानदार और सत्यनिष्ठ साक्षी भी मुख्य घटना से असंबंधित कुछ विवरणों में भिन्न हो सकते

हैं क्योंकि अवलोकन, प्रतिधारण और पुनरुत्पादन की क्षमता भिन्न व्यक्तियों में भिन्न होती है।'

10. राममी विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य [(1999) 8 एससीसी 649: 2000 एससीसी (क्रि) 26] में हाल ही में पारित एक निर्णय में, इस न्यायालय ने अवधारित किया: (एससीसी पृष्ठ 656, पैरा 24)

'24. जब किसी चक्षुदर्शी साक्षी का विस्तारपूर्वक परीक्षण कराया जाता है, तो यह पूरी तरह संभव है कि वह कुछ विसंगतियाँ बता दे। कोई भी सत्यनिष्ठ साक्षी कुछ विसंगतियाँ बताने से बच नहीं सकता। सम्भवतः मिथ्या साक्षी जो अच्छी तरह से प्रशिक्षित हो, अपनी साक्ष्य को पूर्णतः विसंगति रहित बना सकता है। परंतु न्यायालयों को यह विचार रखना चाहिए कि केवल तभी जब किसी साक्षी के साक्ष्य में विसंगतियाँ उसके कथन की विश्वसनीयता के साथ इतनी असंगत हों कि न्यायालय उसके साक्ष्य को खारिज करने के लिए उचित हो। परंतु किसी घटना के वर्णन में केवल भिन्नताओं पर बहुत गंभीर दृष्टिकोण अपनाना (चाहे दो साक्षियों के साक्ष्य के बीच या एक ही साक्षी के दो कथनों के बीच) न्यायिक जाँच के लिए एक अवास्तविक दृष्टिकोण है।'

इस न्यायालय ने आगे अवधारित किया: (एससीसी पृ. 656-57, पैरा 25-27)

25. निचली न्यायालयों में यह एक आम प्रथा है कि किसी साक्षी के पूर्ववर्ती कथन में विरोधाभास निकाला जाए ताकि प्रतिपरीक्षण के दौरान उसका सामना किया जा सके। केवल इसलिए कि साक्ष्य में असंगति है, यह साक्षी की विश्वसनीयता को कम करने के लिए पर्याप्त नहीं है। निस्संदेह, साक्ष्य अधिनियम की धारा 155, किसी असंगत पूर्व कथन के प्रमाण द्वारा साक्षी की विश्वसनीयता पर आक्षेप करने की आशंका प्रदान करती है। परंतु इस धारा को पठन से यह संकेत मिलता है कि सभी असंगत कथन साक्षी की विश्वसनीयता पर अधिक्षेप करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। धारा का मुख्य भाग नीचे उद्धृत किया गया है:

155 साक्षी की विश्वसनीयता पर अधिक्षेप- किसी साक्षी की विश्वसनीयता पर प्रतिपक्षी द्वारा, वा न्यायालय की सम्मति से उस पक्षकार द्वारा, जिमने उसे बुलाया है, निम्नलिखित प्रकारों से अधिक्षेप किया जा सकेगा-

(1)- (2)***

(3) उसके साक्ष्य के किसी ऐसे भाग से, जिसका खण्डन किया जा सकता है। असंगत पिछले कथनों को साबित करने द्वारा ;

26. एक पूर्व कथन, यद्यपि साक्ष्य के साथ असंगत प्रतीत होता है, अनिवार्य रूप से खण्डन के लिए पर्याप्त नहीं है। केवल ऐसा असंगत कथन ही, जिसका "खण्डन" किया जा सकता है, साक्षी की विश्वसनीयता को प्रभावित करेगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 145, प्रतिपरीक्षक को साक्षी के किसी भी पूर्व कथन का उपयोग करने का अधिकार देती है, परंतु यह चेतावनी देती है कि यदि इसका प्रयोजन साक्षी का "खण्डन" करना है, तो प्रतिपरीक्षक को इसमें निर्धारित औपचारिकता का अनुपालन करने का आदेश दिया जाता है। संहिता की धारा 162, प्रतिपरीक्षक को साक्षी के पूर्व कथन (धारा 161 के अधीन दर्ज) का उपयोग केवल सीमित प्रयोजन अर्थात् साक्षी का "खण्डन" हेतु करने की अनुमति प्रदान करता है।

27. अतः किसी साक्षी का खंडन करना, साक्षी के विशेष कथन पर अविश्वास करना होगा। जब तक कि पूर्ववर्ती कथन में वर्तमान कथन पर अविश्वास करने की क्षमता न हो, यद्यपि पश्चात्तवर्ती कथन पूर्ववर्ती कथन से कुछ हद तक भिन्न हो, उस साक्षी का खंडन करने में सहायक नहीं होगा (देखें तहसीलदार सिंह विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य [एआईआर 1959 एससी 1012: 1959 क्रि एलजे 1231])।”

52. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने **भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई विरुद्ध गुजरात राज्य (1983) 3 एससीसी 217** में साक्षियों के साक्ष्य में गौण विसंगतियों को बहुत अधिक महत्व देने के प्रति भी सचेत किया, जो निम्नानुसार है:

“5.... हम अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सावधानीपूर्वक उजागर की गई गौण विसंगतियों के संदर्भ में साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन या पुनर्विवेचन करना उचित या अनुमेय नहीं मानते। गौण विसंगतियों को अत्यधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। कारण स्पष्ट हैं:

(1) मोटे तौर पर किसी साक्षी से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह फोटोग्राफिक मेमोरी रखता हो और किसी घटना का विवरण याद रख सके। ऐसा नहीं है कि मानसिक स्क्रीन पर कोई वीडियो टेप दोबारा चलाया जाता है।

(2) आमतौर पर ऐसा होता है कि एकसाक्षी घटनाओं से अभिभूत हो जाता है। साक्षी उस घटना का पूर्वानुमान नहीं लगा सकता जिसमें प्रायः आश्चर्य का तत्व होता है। इसलिए, मानसिक क्षमताओं से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे विवरणों को आत्मसात करने के लिए तैयार हों।

(3) अवलोकन की शक्तियाँ हर व्यक्ति में अलग-अलग होती हैं। जो एक व्यक्ति देख सकता है, वह दूसरा नहीं भी देख सकता। कोई वस्तु या गति एक व्यक्ति के मन में अपनी छवि बना सकती है, जबकि दूसरे व्यक्ति के लिए वह अनदेखी भी रह सकती है।

(4) आम तौर पर लोग किसी बातचीत को ठीक से याद नहीं कर पाते और न ही अपने द्वारा इस्तेमाल किए गए या सुने गए शब्दों को दोहरा पाते हैं। वे केवल बातचीत का मुख्य आशय ही याद रख पाते हैं। किसी साक्षी से मानव टेप-अभिलेखर होने की उम्मीद करना अवास्तविक है।

5) किसी घटना के सटीक समय या घटना की अवधि के संबंध में, आमतौर पर लोग पूछताछ के समय ही अनुमान लगा लेते हैं। और ऐसे प्रकरणों में लोगों से बहुत सटीक या विश्वसनीय अनुमान लगाने की उम्मीद नहीं की जा सकती। यह भी, यह व्यक्तियों की समय-बोध पर निर्भर करता है जो हर व्यक्ति में अलग-अलग होता है।

(6) आमतौर पर किसी साक्षी से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह घटनाओं के क्रम को सटीक रूप से याद रखे जो तेज़ी से या कम समय में घटित होती हैं। बाद में पूछताछ करने पर साक्षी भ्रमित या उलझ सकता है।

(7) एक साक्षी, भले ही पूर्णतः सत्यनिष्ठ हो, न्यायालयीन वातावरण और अधिवक्ता द्वारा की गई कड़ी प्रतिपरीक्षण से भयभीत हो सकता है और घबराहट के कारण तथ्यों को मिला सकता है, घटनाओं के क्रम को लेकर भ्रमित हो सकता है, या कल्पना से विवरण भर सकता है। साक्षी का अवचेतन मन कभी-कभी मूर्ख दिखने या अविश्वास किए जाने के भय से ऐसा करता है यद्यपि साक्षी अपने द्वारा देखी गई घटना का सही और ईमानदार विवरण दे रहा होता है—सम्भवतः यह एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक रक्षा तंत्र है जो क्षणिक रूप से सक्रिय हो जाता है।”

53. इसी आशय से **अप्पाभाई विरुद्ध गुजरात राज्य (1988) अनुपूरक एससीसी 241** में भी निम्नानुसार अवधारित किया:

“13. ... साक्ष्यों की विवेचना करते समय न्यायालय को गौण विसंगतियों को अनावश्यक महत्व नहीं देना चाहिए। जो विसंगतियाँ अभियोजन के प्रकरण के मूल संस्करण को प्रभावित नहीं करतीं उन्हें खारिज किया जा सकता है। जो विसंगतियाँ

सामान्य धारणा या अवलोकन की त्रुटियों के कारण हैं, उन्हें महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। स्मृति की कमी के कारण होने वाली त्रुटियों को उचित छूट दी जा सकती है। न्यायालय को विभिन्न प्रकरणों में व्यक्तियों और प्रकरणों के अपने विशाल अनुभव का उपयोग करते हुए किसी भी साक्षी द्वारा दिए गए अतिरंजित विवरण को छोड़कर अभिलेखित संपूर्ण सामग्री का मूल्यांकन करना चाहिए। जब ऐसे साक्षी द्वारा आरोपित कुछ तथ्यों के संबंध में कोई संदेह उत्पन्न होता है, तो उचित तरीका यह है कि उस तथ्य को तब तक अनदेखा किया जाए जब तक कि वह प्रकरण की जड़ तक न पहुँच जाए ताकि अभियोजन की पूरी कहानी ध्वस्त हो जाए। आजकल साक्षी अपने कथनों में अलंकरण जोड़ते रहते हैं सम्भवतः इस भय से कि उनके साक्ष्य न्यायालय द्वारा खारिज कर दी जाएगी। यद्यपि, न्यायालयों को ऐसे साक्षियों के साक्ष्य पर पूर्णतः अविश्वास नहीं करना चाहिए यदि वे अन्यथा विश्वसनीय हैं। जगनमोहन सोहराब विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य [(1972) 3 एससीसी 751: 1972 एससीसी (क्रि) 819] में इस न्यायालय की ओर से व्यक्त करते हुए जस्टिस रेड्डी ने व्यक्त किया: [एससीसी पृष्ठ 756, पैरा 8: एससीसी (क्रि) पृष्ठ 824, पैरा 8]

‘8. ... इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि फाल्सस इन यूनो, फाल्सस इन ओम्निबस("एक बात में झूठ, हर बात में झूठ") एक ठोस नियम नहीं है, क्योंकि सम्भवतः ही कोई ऐसा साक्षी मिले जिसके साक्ष्य में ज़रा भी असत्य या अतिशयोक्ति, कढ़ाई या अलंकरण न हो। ज़्यादातर प्रकरणों में, साक्षियों से जब विवरण के बारे में पूछा जाता है, तो वे कुछ उत्तर देने का साहस करते हैं, जो आवश्यक नहीं कि सत्य या सुसंगत हो, इस डर से कि उनका साक्ष्य उस मुख्य घटना के संबंध में स्वीकार न किया जाए, जिसकी उन्होंने साक्ष्य दिया है, परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रकरण की मुख्य विशेषताओं के बारे में उनके साक्ष्य सावधानीपूर्वक जाँच के बाद विचार नहीं किए जा सकते....”

54. हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अपराध स्थल एक ग्रामीण क्षेत्र में था और साक्षी ग्रामीण होने के कारण, उनके साक्ष्य की विवेचना ग्रामीण परिवेश के व्यवहार के आधार पर किया जाना चाहिए। इस संबंध में, हम **शिवाजी साहेबराव बोबड़े विरुद्ध महाराष्ट्र राज्य (पूर्वोक्त)** में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि:

“8. अब तथ्यों की बात करते हैं। हत्या का दृश्य ग्राम्य है, प्रकरण के साक्षी ग्रामीण हैं और इसलिए उनके व्यवहार और संवेदनशील आदतों का आकलन इसी आधार पर किया जाना चाहिए। न्यायालयों में प्रचलित अति-परिष्कृत दृष्टिकोण, जो मानवीय

आचरण के बारे में अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित हैं, स्पष्ट रूप से हमारे गाँवों के सुस्त व्यवहारों पर लागू नहीं हो सकते। विभिन्न साक्षियों के साक्ष्यों का अध्ययन करते समय, हमें यह विचार रखना होगा कि सीमांत भिन्नताएँ, विवरणों में विसंगतियाँ, कथनों में विरोधाभास और अनावश्यक भागों में अलंकरण, साक्ष्य के मूल की सत्यता के विरुद्ध नहीं हो सकते, बशर्ते दी गई साक्ष्य के मूल स्वरूप में सत्यता और संभाव्यता की संभावना का आभास हो। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने साक्ष्यों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया है, विरोधाभासों और अप्राकृतिक आचरण को उजागर किया है, और अपराध से जुड़ी घटनाओं के समय और क्रम का सटीकता से परीक्षण किया है, और यह सब चिकित्सा साक्ष्य और शवपरीक्षण प्रमाणपत्र की कसौटी पर कसा है। निश्चित रूप से, जिस न्यायालय ने साक्षियों को साक्ष्य देते हुए देखा है, उसे अपीलीय न्यायाधीश की तुलना में एक बड़ा लाभ प्राप्त है, जो अभिलेख किए गए साक्ष्य को धीमे-अक्षरों में पढ़ता है, और इस लाभ पर विचार दिया जाना चाहिए जो विचारण न्यायाधीश को प्राप्त है, जिससे वह व्यवहार और प्रस्तुति को देख सकता है, सीधेपन और संदिग्धता, ग्रामीण भोलेपन और चतुराईपूर्ण अस्पष्टता, चालाकी से की गई अनुरूपता और चतुराईपूर्ण असत्यता का पठन किया सकता है, जो उसके सामने मौजूद तथ्यों की शपथ लेते हैं। फिर भी, जहाँ एक न्यायाधीश अपने निष्कर्षसाक्षी की प्रत्यक्षता या संदिग्धता के आधार पर नहीं, बल्कि सामान्य संभावनाओं और विशेषज्ञ साक्ष्य के आधार पर निकालता है, अपीलीय न्यायालय भी प्रथम दृष्टया न्यायालय की तरह ही वैध निष्कर्षों का आकलन करने या उन पर पहुँचने की अच्छी स्थिति में होती है। न ही हम विचारण न्यायाधीश की मानसिक अंतर्दृष्टि का उपहास कर सकते हैं।”

55. इस न्यायालय ने यह भी स्मरण दिलाया कि ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले साक्षियों के साक्ष्यों पर विचार करते समय, साधारण विसंगतियों के कारण, साक्ष्यों को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। **प्रभु दयाल विरुद्ध राजस्थान राज्य, (2018) 8 एससीसी 127** में यह निर्णय पारित किया गया था, जिसमें ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले साक्षियों के साथ व्यवहार करते समय, निम्नानुसार अवधारित किया;

“18. यह एक सामान्य घटना है कि साक्षी ग्रामीण होते हैं और अतिशयोक्ति करने की प्रवृत्ति विकसित कर सकते हैं। यद्यपि, इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसे साक्षियों की सम्पूर्ण साक्ष्य झूठा है। साक्षियों के साक्ष्य में साधारण विरोधाभास अभियोजन के प्रकरण के लिए नुकसानदायक नहीं हैं। इस न्यायालय ने, उत्तर प्रदेश राज्य विरुद्ध एम.के. एंथनी [उत्तर प्रदेश राज्य विरुद्ध एम.के. एंथनी, (1985) 1 एससीसी 505 : 1985 एससीसी (क्रि) 105] में,

यह माना कि केवल विसंगतियाँ और विसंगतियाँ सारे साक्ष्य को अस्वीकार करने योग्य नहीं हैं। इसने इस प्रकार कहा: (एससीसी पृष्ठ 514-15, पैरा 10)

“10. किसी साक्षी के साक्ष्य की विवेचना करते समय, दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि क्या साक्षी के साक्ष्य को समग्र रूप से पठन करने पर सत्य की झलक मिलती है। एक बार यह धारणा बन जाने के बाद, न्यायालय के लिए यह निःसंदेह आवश्यक है कि वह साक्ष्य की और अधिक गहन जाँच करे, विशेष रूप से साक्ष्य में इंगित की गई कमियों, कमियों और दोषों को विचार में रखते हुए और उनका विवेचन करके यह पता लगाए कि क्या यह साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के विरुद्ध है और क्या साक्ष्य का पूर्व मूल्यांकन इस हद तक विकृत है कि वह विश्वास के योग्य नहीं है। प्रकरण के मूल को न छूने वाले तुच्छ प्रकरणों पर गौण विसंगतियाँ, यहाँ-वहाँ साक्ष्य से संदर्भ से हटकर वाक्यों को लेकर अति-तकनीकी दृष्टिकोण, विवेचना अधिकारी द्वारा की गई किसी तकनीकी त्रुटि को महत्व देना और प्रकरण की जड़ तक न जाना सामान्यतः साक्ष्य को समग्र रूप से अस्वीकार करने की अनुमति नहीं देगा। यदि जिस न्यायालय के समक्ष साक्षी साक्ष्य देता है, उसे राय बनाने का अवसर मिला होता सामान्य साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य के सार के बारे में, अपीलीय न्यायालय जिसे यह लाभ नहीं मिला था, उसे विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य की विवेचना को उचित महत्व देना होगा और जब तक कोई ठोस और ठोस कारण न हों, तब तक साधारण भिन्नताओं या कमियों के आधार पर साक्ष्य को अस्वीकार करना उचित नहीं होगा। यहाँ तक कि ईमानदार और सच्चे साक्षी भी कुछ विवरणों में भिन्न हो सकते हैं जो मुख्य घटना से असंबंधित हैं क्योंकि अवलोकन, धारण और पुनरुत्पादन की शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न होती है। प्रतिपरीक्षण एक ग्रामीण और परिष्कृत अधिवक्ता के बीच एक असमान द्वंद्व है। इस साक्षी, जो परिवार का मित्र और शुभचिंतक है, के साक्ष्य की जाँच करने के बाद, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई टिप्पणियों और उच्च न्यायालय द्वारा उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए दिए गए कारणों को विचार से विचार में रखते हुए, विचारण न्यायालय द्वारा इस साक्षी के साक्ष्य की विवेचना को विचार में रखते हुए, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि उच्च न्यायालय ने साक्षी नायर जिसका साक्ष्य हमारे लिए भरोसेमंद और विश्वसनीय के साक्ष्य को अस्वीकार करने में त्रुटि की थी,।”

(बल दिया गया)

19.

20. न्यायालय साक्षियों के साक्ष्य में सत्य और असत्य कथनों में अंतर कर सकता है। लीला राम विरुद्ध हरियाणा राज्य [लीला राम विरुद्ध हरियाणा राज्य, (1999) 9 एससीसी 525 : 2000 एससीसी (क्रि) 222] में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 534, पैरा 12)

“12. यह विचार रखना आवश्यक है कि सम्भवतः ही कोई ऐसा साक्षी मिले जिसके साक्ष्य में कुछ अतिशयोक्ति या अलंकरण न हो— कभी—कभी जानबूझकर अलंकरण देने का प्रयत्न भी हो सकता है और कभी—कभी अपनी अति—चिंता में वे थोड़ा बढ़ा—चढ़ाकर कथन दे सकते हैं। न्यायालय अनाज से भूसा अलग कर सकती है और साक्षियों के साक्ष्य से सत्यता का पता लगा सकती है। साक्ष्य को पूर्णतः नकारना अनावश्यक है। साक्ष्य पर विश्वसनीयता के दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए। यदि यह तत्व संतुष्ट है, तो इससे न्यायालय के मन में कथित साक्ष्य को स्वीकार करने का विश्वास प्रेरित होना चाहिए यद्यपि उसके अभाव में नहीं।”

21. इसके अतिरिक्त, यह आवश्यक नहीं है कि किसी साक्षी के सम्पूर्ण साक्ष्य को इसलिए अनदेखा कर दिया जाए क्योंकि उसके साक्ष्य का एक हिस्सा झूठा है। इस न्यायालय ने गंगाधर बेहरा विरुद्ध उड़ीसा राज्य [गंगाधर बेहरा विरुद्ध उड़ीसा राज्य, (2002) 8 एससीसी 381 : 2003 एससीसी (क्रि) 32] में यह टिप्पणी की: (एससीसी पृष्ठ 392, पैरा 15)

“15. पंजाब राज्य विरुद्ध जागीर सिंह [पंजाब राज्य विरुद्ध जागीर सिंह, (1974) 3 एससीसी 277 : 1973 एससीसी (क्रि) 886 : एआईआर 1973 एससी 2407] और लहना विरुद्ध हरियाणा राज्य [लहना विरुद्ध हरियाणा राज्य, (2002) 3 एससीसी 76 : 2002 एससीसी (क्रि) 526] में भी इसी आशय का निर्णय दिया गया है। अपीलार्थी—अभियुक्त ने कुछ साक्षियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को अस्वीकार करने पर बल दिया, जिसमें पूरे अभियोजन के प्रकरण को खारिज करने की वांछनीयता का तर्क दिया गया था। संक्षेप में, प्रार्थना का उद्देश्य फाल्सस इन यूनो, फाल्सस इन ओम्निबस (एक बात में झूठ, हर चीज में झूठ) के सिद्धांत को लागू करना है। यह अभिवचन स्पष्ट रूप से अस्थिर है। भले ही साक्ष्य का एक बड़ा हिस्सा अपर्याप्त पाया जाए, प्रकरण का अवशेष किसी अभियुक्त का अपराध सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है, अन्य कई सह—अभियुक्तों के दोषमुक्त होने के बावजूद, उसकी दोषसिद्धि बरकरार रखी जा सकती है। न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अनाज को भूसे से अलग करे। जहाँ भूसे को अनाज से अलग किया जा सकता है, वहाँ न्यायालय किसी अभियुक्त को दोषी ठहरा सकता है, भले ही अन्य अभियुक्तों का अपराध सिद्ध करने के लिए साक्ष्य अपर्याप्त पाए गए हों। किसी विशेष महत्वपूर्ण साक्षी या महत्वपूर्ण विवरण का झूठा होना उसे शुरु से अंत तक बर्बाद नहीं करेगा। भारत में “एक ही बात में झूठ, एक ही बात में झूठ” वाली कहावत लागू नहीं होती और साक्षियों को “झूठा” नहीं कहा जा सकता। “एक ही बात में झूठ, एक ही बात में झूठ” वाली कहावत को सामान्य स्वीकृति नहीं मिली है और न ही इस कहावत को विधि के शासन का दर्जा प्राप्त हुआ है। यह केवल सावधानी का नियम है। इसका तात्पर्य केवल यह है

कि ऐसे प्रकरणों में साक्ष्य को अनदेखा किया जा सकता है, न कि उसे अनदेखा किया जाना चाहिए।"

56. इस न्यायालय की उपरोक्त टिप्पणियों को विचार में रखते हुए, हम मृतक की माँ, लता बाई, अ.सा.-10 के साक्ष्य का परीक्षण करेंगे। उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व कि उसका साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद है, अ.सा.-10 के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक विवेचना की थी।

57. बचाव पक्ष द्वारा अ.सा.-10 का कथन विलम्ब से दर्ज करने की अभिवचन पर काफ़ी बल दिया गया, जिस पर उच्च न्यायालय ने विधिवत विचार किया। उच्च न्यायालय ने पाया कि विवेचना अधिकारी (विवेचना अधिकारी) से यह नहीं पूछा गया कि साक्षी का परीक्षण कराने में विलम्ब क्यों हुआ, क्योंकि ऐसा न होने पर बचाव पक्ष को इससे कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता।

इस संबंध में, हम उत्तर प्रदेश राज्य विरुद्ध सतीश (पूर्वोक्त) प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ ले सकते हैं, जिसमें यह अवधारित किया गया था कि,

"18. कुछ साक्षियों की विलम्ब से कराए गए परीक्षण के संबंध में, इस न्यायालय ने कई निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया है कि जब तक विवेचना अधिकारी से स्पष्ट रूप से यह नहीं पूछा जाता कि साक्षियों का परीक्षण कराने में विलम्ब क्यों हुआ, तब तक बचाव पक्ष को इससे कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। यह सार्वभौमिक रूप से लागू होने वाला नियम नहीं बनाया जा सकता कि यदि किसी विशेष साक्षी के परीक्षण में विलम्ब होती है तो अभियोजन का कथन संदिग्ध हो जाता है। यह कई कारकों पर निर्भर करेगा। यदि विलम्ब से कराए गए परीक्षण के लिए दिया गया स्पष्टीकरण विश्वसनीय और ग्राह्य है और न्यायालय उसे विश्वसनीय मानता है, तो निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है। (देखें रणबीर विरुद्ध पंजाब राज्य [(1973) 2 एससीसी 444: 1973 एससीसी 858: एआईआर 1973 एससी 1409], बोधराज विरुद्ध जम्मू-कश्मीर राज्य [(2002) 8 एससीसी 45: 2003 एससीसी (दा.) 201] और बंटी विरुद्ध राज्य मध्य प्रदेश [(2004) 1 एससीसी 414: 2004 एससीसी (दा.) 294]

19.

20. यह विचार करने योग्य है कि अभियुक्त द्वारा विलम्ब से की गई पूछताछ के पहलू पर पूछताछ किए जाने पर, जब विवेचना अधिकारी द्वारा स्पष्टीकरण दिया जाता है, तो न्यायालय को उसकी विश्वसनीयता की कसौटी पर परखना होगा। यदि स्पष्टीकरण विश्वसनीय है, तो कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। दूसरी ओर, यदि स्पष्टीकरण अविश्वसनीय पाया

जाता है, तो न्यायालय निश्चित रूप से इसे उन साक्षियों की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारकों में से एक मान सकता है, जिनकी विलम्ब से पूछताछ की गई थी। इसका अभियोजन द्वारा अन्य साक्षियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की विश्वसनीयता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता है।

58. वर्तमान प्रकरण में, हमने यह भी देखा है कि बचाव पक्ष ने विवेचना अधिकारी से अ.सा.-10 के कथन विलम्ब से दर्ज करने के बारे में ऐसा कोई प्रश्न नहीं पूछा था। साक्षी से भी इस बारे में नहीं पूछा गया, जिससे साक्षी को अपने साक्ष्य विलम्ब से दर्ज करने का कारण बताने का अवसर मिल जाता। इसलिए, अ.सा.-10 को बदनाम करने के लिए अब ऐसी अभिवचन नहीं दी जा सकती।

इसके अतिरिक्त, हमने जो देखा है, जैसा कि उच्च न्यायालय ने भी कथन किया है, वह यह है कि अ.सा.-10, जो एक माँ थी, अपने आहत पुत्र की गंभीर हालत देखकर उसकी भलाई और जीवित रहने को लेकर ज़्यादा चिंतित थी और घटना की सूचना देने के लिए थाना पहुँची, एवं तत्पश्चात, वह तुरंत अपने आहत पुत्र को लेकर शासकीय अस्पताल गई एवं तत्पश्चात उपचार के लिए अन्य विशेषज्ञ अस्पतालों में गई। वह आहत पुत्र के उपचार के लिए उसके साथ तब तक रही जब तक कि उसकी चोटों के कारण मृत्यु नहीं हो गई। इस प्रकार, वह अपने आहत पुत्र का उचित उपचार कराने में व्यस्त थी और अपने पुत्र की मृत्यु के बाद वापस आने तक गाँव में नहीं थी और वह शवपरीक्षण के समय भी मौजूद थी। इसलिए, यदि अ.सा.-10 घटना के तुरंत बाद अपने पुत्र के उपचार कराने में व्यस्त थी और धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन उसका कथन पहले दर्ज नहीं किया जा सका, तो यह उसके साक्ष्य को अविश्वसनीय नहीं ठहरा सकता, विशेषतया तब जब घटना के समय घर में उसकी उपस्थिति सूचना देने वाले अ.सा.-6 के साक्ष्य से साबित हो गई, जो मृतक के परिवार का सदस्य नहीं है।

59. अ.सा.- 10 ने दावा किया कि वह घटना की सूचना देने थाना गई थी और पुलिस ने उससे कहा कि वे पहले घटनास्थल पर जाएँगे और बाद में उसका साक्ष्य दर्ज करेंगे। वह थाना गई थी, यह बात उसके पति (अ.सा.- 5) के साक्ष्य से भी संपुष्ट होती है, जिसने साक्ष्य दिया कि जब वह और उसकी पत्नी (अ.सा.- 10) घर से बाहर आए और अपने आहत पुत्र को देखा, तो उसने तुरंत अपनी पत्नी को थाना भेज दिया। यह भी विचार करने योग्य है कि बचाव पक्ष ने अ.सा.- 5 से इस पहलू पर भी प्रतिपरीक्षण नहीं की, सम्भवतः इसलिए कि उसने हमलावरों के रूप में अभियुक्तों के नाम नहीं बताए, जिसके कारण अभियोजन के कहने पर न्यायालय ने उसे पक्षद्रोही साक्षी घोषित कर दिया।

जैसा कि उपरोक्त वर्णन किया गया है, अ.सा. क्रमांक 10 ने प्रतिपरीक्षण के दौरान अपीलार्थीगण की ओर से दिए गए इस सुझाव पर सहमति जताई कि पुलिस ने उसे थाने में बताया था कि रिपोर्ट बाद में दर्ज की जाएगी और उन्हें पहले घटनास्थल का दौरा करना चाहिए। उसका उत्तर इन शब्दों में था:

"यह कहना उचित है कि पुलिस वाले ने मुझसे कहा था कि तुम्हारी रिपोर्ट बाद में दर्ज की जाएगी, पहले घटनास्थल पर जाकर देखते हैं।"

बचाव पक्ष का यह सुझाव, अ.सा.-10 के कथन दर्ज करने में विलम्ब के विवादक पर बचाव पक्ष के अभिवचन को ही निष्प्रभावी कर देता है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि अ.सा.-10 की माँ सदमे की स्थिति में थी और अपने पुत्र के उपचार कराने में ज्यादा रुचि रखती थी, यदि पुलिस ने उस समय अ.सा.-10 का कथन दर्ज नहीं किया होता, तो इसे असामान्य नहीं कहा जा सकता था। हमारा मानना है कि इन परिस्थितियों में, धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन अ.सा.-10 का कथन दर्ज करने में हुई देरी को विवेचना अधिकारी द्वारा जानबूझकर किया गया कार्य नहीं कहा जा सकता, जिसका उद्देश्य निर्दोष व्यक्तियों को झूठा फंसाने के लिए सबूतों में हेरफेर या गढ़ना था। तदनुसार, हमारा मानना है कि अपीलार्थीगण द्वारा **उड़ीसा राज्य विरुद्ध ब्रह्मानंद नंदा (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में लिया गया निर्णय वर्तमान प्रकरण में लागू नहीं होता। उक्त प्रकरण में, उच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय ने भी एकमात्र चक्षुदर्शी साक्षी द्वारा डेढ़ दिन तक अभियुक्त का नाम न बताने के साक्ष्य को विश्वसनीय नहीं पाया और अभियुक्त का नाम न लेने के कारण उसके डर की अभिवचन को स्वीकार करने से इनकार कर दिया, क्योंकि पुलिस और उसका भतीजा पहले ही घटनास्थल पर पहुँच चुके थे और अभियुक्त कोई गैंगस्टर या संपुष्ट अपराधी नहीं था जिससे लोग भयभीत हों। उक्त प्रकरण में इस न्यायालय ने यह भी पाया कि उक्त एकमात्र साक्षी के साक्ष्य पर विश्वास न करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा कई अन्य कारण भी बताए गए थे।

60. हमने मृतक के पिता शत्रुघ्न शर्मा, अ.सा.-5, के साक्ष्य पर भी विचार किया है, जिन्होंने अपीलार्थीगण को अपने पुत्र पर हमला करते हुए देखने से इनकार किया है, जिनके साक्ष्य के आधार पर बचाव पक्ष ने यह तर्क देने के लिए बहुत कुछ कहा है कि पीड़ित का पिता होने के नाते उन्होंने अपनी पत्नी के साक्ष्य का समर्थन नहीं किया। उन्होंने मुख्य परीक्षा में कहा कि उस घटना के दिन जब वह सो रहे थे, तब उनकी पत्नी, लता बाई (अ.सा.-10) ने उन्हें जगाया और बताया कि घर के बाहर झगड़ा हो रहा है और जब वह बाहर आए तो उन्होंने देखा कि हर जगह रक्त फैला हुआ है और उनका पुत्र रक्तरंजित है और उन्होंने तुरंत अपनी पत्नी को थाना भेजा। उन्होंने अपने पुत्र के शव के पास कुछ अन्य पड़ोसियों को भी खड़ा देखा। प्रतिपरीक्षण के दौरान उन्होंने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन दर्ज अपने कथन में अपीलार्थीगण के नामों का उल्लेख करने से इनकार किया।

61. विचार करने योग्य बात यह है कि उसकी पत्नी लता बाई (अ.सा.-10) ने बताया कि अपीलार्थीगण द्वारा उसके पुत्र पर हमला होते देखने के बाद, वह घर के अंदर गई और अपने पति को

जगाया और उसके हाथ खींचकर बाहर आई और जब वे दोनों घटनास्थल पर पहुँचे, तो सभी हमलावर भाग चुके थे।

यह भी विचार करने योग्य है कि प्रतिपरीक्षण के दौरान अ.सा.-10 ने कथन किया कि उसके पति के जागने के बाद, वह घटनास्थल पर जाने के बजाय, अपने जूते ढूँढ़ रहा था, जिस पर अ.सा.-10 ने उसे "कुत्ता" कहकर गालियाँ दीं एवं तत्पश्चात ही वह अपने अंडरवियर में बाहर आया। इस प्रकार, अ.सा.-10 के इस कथन से, यह स्पष्ट रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि अ.सा.-5 ने हमलावरों को नहीं देखा होगा। इस प्रकार, उसके साक्ष्य के अ.सा.-10 के साक्ष्य के विपरीत होने का कोई प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि अ.सा.-5 ने हमले को नहीं देखा था। इस प्रकार, अ.सा.-5 का साक्ष्य अ.सा.-10 के साक्ष्य का खंडन नहीं करता है और कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर उसका समर्थन करता है, जैसा कि उपरोक्त विमर्श किया गया है।

62. हमने यह भी देखा है कि शत्रुघ्न शर्मा, अ.सा.-5, ने प्रतिपरीक्षण में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वह अपीलार्थीगण के पिता चिंताराम के साथ गांजा पीने के कारण घनिष्ठ संबंध रखता था। अ.सा.-5 ने स्वीकार किया है कि वह गांजा और शराब का सेवन करता था। उसने यह भी कहा कि वह और अपीलार्थीगण के दोषमुक्त पिता चिंताराम, नियमित रूप से गांजा पीते थे।

यह भी विचार करने योग्य है कि अभियोजन द्वारा की गई प्रतिपरीक्षण में अ.सा.-5 को पक्षद्रोही साक्षी घोषित किए जाने के बाद, उसने (प्रकरण के न्यायालयीन अभिलेख के अनुसार) निम्नानुसार कथन किया:—

“(8) यह सत्य है कि मैंने और चिंताराम ने कई बार साथ में गांजा पिया था। यह सत्य है कि मैं कल भी न्यायालय में आया था। यह सत्य है कि मैंने और चिंताराम ने एक-दूसरे को गले लगाया था। यह भी सत्य है कि तीनों अभियुक्तों ने पैर छूकर मुझे प्रणाम किया था।”

इस प्रकार, इस बात से इनकार करने के बावजूद कि पुरानी मित्रता के कारण वह अभियुक्तों के विरुद्ध कथन नहीं दे रहा था, यह स्पष्ट है कि उसे मना लिया गया था, क्योंकि अन्यथा, अभियुक्तों के लिए उसके प्रति इतना हार्दिक होने का कोई कारण नहीं था और तीनों अभियुक्तों ने उसके पैर छूकर उसे प्रणाम किया।

63. यदि हम अ.सा.-10 के साक्ष्य की जाँच अन्य साक्ष्यों के आलोक में करें जो अभिलेख में प्रस्तुत हैं और अभियोजन द्वारा सिद्ध किए गए हैं, तो यह देखा जा सकता है कि अ.सा.-10 का साक्ष्य संपुष्ट है और इसलिए, हमारे पास अ.सा.-10 के साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है।

64. हमने इस तथ्य पर विचार दिया है कि उच्च न्यायालय ने देखा था कि पीड़ित सूरज की जांच डॉ. जी.आर. अग्रवाल (अ.सा.-1) ने 23.9.2001 को सुबह लगभग 8 बजे की थी, जो कि हमले के लगभग एक घंटे बाद की बात है। प्र.पी./1 के अनुसार और उक्त दस्तावेज़ में, दो अपीलार्थीगण, गोवर्धन और राजेंद्र के नाम उन लोगों के रूप में उल्लेखित थे जिन्होंने पीड़ित पर टंगिया और लोहे के पाइप से हमला किया था, परंतु तीसरे अभियुक्त चिंताराम का नाम नहीं था। यद्यपि उक्त चिकित्सा अभिलेख में केवल दो अपीलार्थीगण के नामों का उल्लेख दोनों अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करने का आधार नहीं हो सकता है, फिर भी, यह उन परिस्थितियों को दर्शाता है जिनमें पीड़ित को अस्पताल लाया गया था और इस प्रकार, प्रथम सूचना रिपोर्ट की सामग्री की सत्यता को विश्वसनीयता प्रदान करता है जिसमें अपीलार्थीगण को हमलावरों के रूप में नामित किया गया था।

65. चिकित्सक द्वारा चिकित्सा अभिलेख पर की गई यह टिप्पणी कि अपीलार्थी, गोवर्धन और राजेंद्र ने ही पीड़ितों पर हमला किया था, सुनवाई के आधार पर साक्ष्य के रूप में देखी जा सकती है, फिर भी, यह थाना में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के लगभग आधे घंटे के भीतर और घटना के लगभग एक घंटे के भीतर दर्ज किया गया था और यह घटना से सीधे तौर पर संबंधित है। यद्यपि चिकित्सा रिपोर्ट घटना के तुरंत बाद नहीं बनाई गई थी, परंतु इसे बिना किसी अतिरिक्त समय अंतराल के बनाया गया था और यह घटना के लगभग समकालीन ही बनाई गई थी। इसके अतिरिक्त, चिकित्सा अभिलेख शिकायतकर्ता, अ.सा.-6 द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुरूप था, इस प्रकार यह प्रथम सूचना रिपोर्ट की विषय-वस्तु की पुष्टि करता है जिसमें अपीलार्थीगण को हमलावरों के रूप में नामित किया गया था। हमारी राय में, चूंकि घटना के तुरंत बाद प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और अपीलार्थीगण के नाम बहुत ही कम समय में चिकित्सा अभिलेख में हमलावरों के रूप में फिर से दर्ज किए गए थे, इसलिए सबूतों को गढ़ने और अपीलार्थीगण को प्रकरण में झूठा फंसाने की कोई संभावना नहीं थी, क्योंकि उनका नाम पहले से ही प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज था। प्रकरण कुछ और होता यदि अपीलार्थीगण के नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज न होते परंतु बाद में चिकित्सा अभिलेख में दर्ज होते, तो बचाव पक्ष द्वारा यह तर्क दिया जा सकता था कि यह बाद में किया गया था। यद्यपि, वर्तमान प्रकरण में ऐसी स्थिति नहीं है।

66. हमें यह भी विचार में रखना चाहिए कि किसी विचारण में साक्ष्य का आकलन तकनीकी तरीके से नहीं किया जा सकता है और सत्य तक पहुँचने के लिए जीवन की वास्तविकताओं को विचार में रखना

चाहिए, जैसा कि इस न्यायालय ने हिमाचल प्रदेश राज्य विरुद्ध लेख राज (2000) 1 एससीसी 247 में निम्नानुसार कहा है;

“10. ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रस्तुत अपील का निराकरण करने में तकनीकी दृष्टिकोण अपनाया है। इस न्यायालय ने पंजाब राज्य विरुद्ध जागीर सिंह [(1974) 3 एससीसी 277 : 1973 एससीसी (क्रि) 886] में यह निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 285-86, पैरा 23)

23. दार्ष्टिक विचारण किसी परीकथा जैसा नहीं होता जिसमें कोई अपनी कल्पना और कल्पना को उड़ान देने के लिए स्वतंत्र हो। यह इस प्रश्न से संबंधित है कि क्या विचारण में आरोपित अभियुक्त उस अपराध का दोषी है जिसका उस पर आरोप लगाया गया है। अपराध वास्तविक जीवन की एक घटना है और विभिन्न मानवीय भावनाओं के परस्पर प्रभाव का परिणाम है। किसी अपराध के अभियुक्त अभियुक्त के अपराध के बारे में निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए, न्यायालय को साक्ष्य की विवेचना संभावनाओं, उसके आंतरिक मूल्य और साक्षियों की शत्रुता के आधार पर करना होता है। अंतिम विश्लेषण में प्रत्येक प्रकरण को अपने तथ्यों पर निर्भर रहना होगा। यद्यपि अभियुक्त को हर युक्तियुक्त संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए, न्यायालयों को ऐसे साक्ष्य को भी अस्वीकार नहीं करना चाहिए जो प्रत्यक्षतः विश्वसनीय हों, ऐसे आधारों पर जो काल्पनिक हों या अनुमानों की प्रकृति के हों। दार्ष्टिक विचारण की तुलना किसी स्टंट फिल्म के नकली दृश्य से नहीं की जा सकती। विधिक मुकदमा अभियुक्त के दोषी या निर्दोष होने का पता लगाने के लिए चलाया जाता है। सत्य के बारे में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए, न्यायालयों को एक तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाना होगा और साक्ष्य की विवेचना उसके आंतरिक मूल्य और साक्षियों की द्वेषता के आधार पर करना होगा। अति-तकनीकी या कल्पना की उपज को न्यायालय को किसी विशेष परिस्थिति के अस्तित्व या अनुपस्थिति के बारे में निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए साक्ष्यों को छाँटने और तौलने की अपनी जिम्मेदारी से वंचित नहीं करने देना चाहिए, जिसमें प्रत्येक प्रकरण के विशिष्ट तथ्यों, पीड़ित और अभियुक्त की सामाजिक स्थिति, समाज के व्यापक हित, विशेष रूप से विधि और व्यवस्था की समस्या और प्रचलित व्यवस्था में निहित जीवन के निम्न मूल्यों को विचार में रखा जाता है। सत्य तक पहुँचने के लिए साक्ष्यों की विवेचना करते समय जीवन की वास्तविकताओं को विचार में रखना होगा। न्यायालय अभियोजन को छूट देने या अभियुक्त के पक्ष में

विधि की ढीली व्याख्या करने के लिए प्रयत्न करने के लिए बाध्य नहीं हैं। दण्डिक विचारण में न्याय प्रशासन के लिए पारंपरिक हठधर्मी अति-तकनीकी दृष्टिकोण को एक तर्कसंगत, यथार्थवादी और वास्तविक दृष्टिकोण से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। आपराधिक न्यायशास्त्र को एक काल्पनिक विचार नहीं माना जा सकता, बल्कि इसे मानव सभ्यता और जीवन की वास्तविकताओं का अभिन्न अंग माना जाना चाहिए। न्यायालय जीवन मूल्यों के क्षरण को अनदेखा नहीं कर सकतीं, जो वर्तमान व्यवस्था की एक सामान्य विशेषता है। ऐसे क्षरण को उन लोगों के पक्ष में कोई अतिरिक्त लाभ नहीं दिया जा सकता जो समाज और मानव जाति को दूषित करने के दोषी हैं।”

67. अपराध के हथियारों की ज़बती के संबंध में, विवेचना अधिकारी (विवेचना अधिकारी) राम कुमार वैष्णव, (अ.सा.-15) ने साक्ष्य दिया कि अपीलार्थी क्रमांक 1 (गोवर्धन) के कहने पर, छोटी टंगिया बरामद की गई और पंचनामा (प्र.पी./3) तैयार किया गया। इसी प्रकार, अपीलार्थी क्रमांक 2, राजेंद्र के कहने पर एक लोहे का पाइप बरामद किया गया और पंचनामा (प्र.पी./5) तैयार किया गया। दोनों ज़बती के साक्ष्य शैलू (अ.सा.-2) और कन्हैया (अ.सा.-12) ने दी। यद्यपि विवेचना अधिकारी (अ.सा.-15) ने अपने हस्ताक्षर और उपरोक्त दोनों ज़बती पत्रकों की तैयारी साबित कर दी, दोनों साक्षी पक्षद्रोही हो गए और दावा किया कि उन्होंने केवल पुलिस के कहने पर अपने हस्ताक्षर किए थे और उन्होंने अपने हस्ताक्षर खाली प्रपत्रों पर किए थे।

विचारणीय तथ्य यह है कि इन दोनों साक्षियों ने, यद्यपि, ज़बती पत्रकों पर अपने हस्ताक्षर करने की बात स्वीकार की। उन्होंने अभिवाक किया कि उन्होंने पुलिस के कहने/धमकी देने पर ऐसा किया और उन्हें नहीं पता था कि इन दस्तावेजों पर क्या लिखा है। उन्होंने यह भी कहा कि ज़बती से पूर्व पुलिस ने अभियुक्तों से कोई पूछताछ नहीं की थी।

यह भी विचार करने योग्य है कि दोनों साक्षी, शैलू (अ.सा.-2) और कन्हैया (अ.सा.-11), उसी गाँव, तिल्दा के रहने वाले थे जहाँ हत्या हुई थी और दोनों ने दावा किया कि उन्हें इस प्रकरण की कोई जानकारी नहीं थी, परंतु दोनों ने स्वीकार किया कि वे अपीलार्थीगण को जानते थे। शैलू (अ.सा.-2) ने कथन किया कि वह अपीलार्थीगण को जानता था और वे उसके घर से कुछ दूरी पर रहते थे। प्रतिपरीक्षण में, शैलू अ.सा.-2 ने दावा किया कि उसे प्रकरण की कोई जानकारी नहीं थी।

कन्हैया, अ.सा.-11, अन्य ज़बती साक्षी, स्वीकार करता है कि ज़बती पत्रक उसकी उपस्थिति में तैयार किया गया था, और पुलिस ने उससे उस पर हस्ताक्षर करने को कहा और उसने

अपने हस्ताक्षर स्वीकार कर लिए, यद्यपि उसने यह भी कहा कि अपीलार्थी राजेंद्र से उसकी उपस्थिति में कोई ज़बती नहीं की गई थी। उसने यह भी कहा कि पुलिस ने छोटी टंगिया ज़ब्त की और उसे दोनों साक्षियों को दिखाया और पुलिस ने बताया कि टंगिया अपीलार्थीगण के घर से मिली थी।

अभियोजन द्वारा पक्षद्रोही घोषित किए जाने के उपरांत कराए गए प्रतिपरीक्षण में, अ.सा.-11 ने स्वीकार किया कि वह प्रायः अपीलार्थीगण के साथ गांजा पीता था और जब भी वह शिक्षक कॉलोनी से गुजरता था, तो वह दोषमुक्त अभियुक्त और गांजा पीने वाले दो अपीलार्थीगण के पिता चिंताराम के साथ रुकता था और उसने चिंताराम को परिचित होने की बात स्वीकार की। यद्यपि, उसने अभियोजन के इस दावे का खंडन किया कि वह सत्य नहीं बोल रहा है क्योंकि वह चिंताराम को अच्छी तरह जानता था।

68. इस प्रकार, उपरोक्त से यह बात सामने आती है कि दोनों ज़बती साक्षियों ने ज़बती पत्रक पर अपने हस्ताक्षरों से इनकार नहीं किया है और अपने हस्ताक्षर करने की बात स्वीकार की है। अ.सा.-11 तो यहाँ तक कहता है कि पुलिस ने उन्हें एक छोटी टंगिया दिखाई थी, जिसके बारे में पुलिस ने कहा था कि वह अपीलार्थीगण के घर से ज़ब्त की गई थी।

यद्यपि दोनों साक्षियों ने अपीलार्थीगण के कहने पर हथियारों की वास्तविक बरामदगी के बारे में कोई जानकारी होने से इनकार किया है, परंतु उनका इनकार विश्वसनीय नहीं लगता। यद्यपि, चूँकि प्रकरण के विवेचना अधिकारी, अ.सा.-15 ने उक्त ज़बती पत्रकों को साबित कर दिया था, इसलिए हमें यह मानने का कोई कारण नहीं मिलता कि कोई ज़बती नहीं हुई थी जो केवल इसलिए प्रभावित हुई क्योंकि दोनों ज़बती साक्षियों ने अपने कथन से पलट गए थे।

यह विचार करने योग्य है कि टंगियाँ घटना के दिन ही, दिनांक 23.0.2001 को शाम 4:45 बजे ज़ब्त की गई थीं और ये रक्त रंजित थीं। जैसा कि प्र.पी./6 में दर्ज है और डॉ. जी.आर. अग्रवाल, अ.सा.-1 ने भी इन वस्तुओं को रासायनिक परीक्षण के लिए प्रेषित करते समय उल्लेख किया था।

69. यह मानते हुए भी कि हथियारों की ज़बती प्रक्रियाओं का सावधानीपूर्वक अनुपालन किए बिना की गई थी और इस प्रकार संदिग्ध थी, चिकित्सा साक्ष्य के दृष्टिगत, जिसने स्पष्ट रूप से दर्शाया कि मृतक की मृत्यु धारदार हथियार से लगी चोटों के कारण हुई थी, जिसे एक चक्षुदर्शी साक्षी, अर्थात् लता बाई (अ.सा.-10) ने देखा था, हमारी राय में, इससे अभियोजन के प्रकरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। पीड़ित का परीक्षण करने वाले चिकित्सक (अ.सा.-1) ने साक्ष्य दिया कि उसने दिनांक

29.9.2001 को अपराध में प्रयुक्त हथियारों की जांच की थी, जो पुलिस द्वारा एक सीलबंद पैकेट में उसके पास लाए गए थे और उसने अभिमत दिया था कि चोटें क्रमांक (ii), (iii), (iv), (vi) और (vii) टंगिया की तेज धार से लगी हो सकती हैं और चोटें क्रमांक (i), (vi), (viii) और (ix) लोहे के पाइप से लगी हो सकती हैं। इस महत्वपूर्ण चिकित्सा साक्ष्य पर बचाव पक्ष द्वारा इससाक्षी अ.सा.-1 का कोई प्रतिपरीक्षण नहीं कराया गया। इस प्रकार, यह चिकित्सा अभिमत अडिग रहा, जो अभियोजन के प्रकरण और लता बाई, अ.सा.-10 के साक्ष्य का समर्थन करती है।

70. अब यह सुस्थापित हो चुका है कि अपराध के हथियार की बरामदगी न होना अभियोजन के प्रकरण के लिए नुकसानदायक नहीं है और दोषसिद्धि के लिए अनिवार्य नहीं है यदि प्रत्यक्ष विश्वसनीय साक्षी उपस्थित हों, जैसा कि **राकेश विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 7 एससीसी 188** में अभिनिर्धारित किया गया है, जिसमें निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

“12. अब जहाँ तक अभियुक्त की ओर से यह अभिवचन किया गया है कि बैलिस्टिक रिपोर्ट के अनुसार, बरामद गोली बरामद किए गए आग्रेयास्त्र/बंदूक से मेल नहीं खाती और इसलिए कथित बंदूक का इस्तेमाल संदिग्ध है और इसलिए अभियुक्त को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए, तो उपरोक्त बात स्वीकार नहीं की जा सकती। अधिकतम, यह कहा जा सकता है कि पुलिस द्वारा अभियुक्त से बरामद बंदूक का प्रयोग हत्या के लिए नहीं किया गया होगा और इसलिए हत्या में प्रयुक्त वास्तविक हथियार की बरामदगी को अनदेखा किया जा सकता है और इसे ऐसे माना जाना चाहिए जैसे कोई बरामदगी हुई ही नहीं। किसी अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए अपराध में प्रयुक्त हथियार की बरामदगी अनिवार्य नहीं है। अ.सा. 1 और अ.सा. 2, जैसा कि उपरोक्त उल्लेखित है, घटना के विश्वसनीय और भरोसेमंद चक्षुदर्शी साक्षी हैं और उन्होंने विशेष रूप से कथन किया है कि ए-1 राकेश ने बंदूक से गोली चलाई और मृतक को चोट लगी। बंदूक से लगी चोट चिकित्सा साक्ष्य और न्यायालयीन कथन डॉ. संतोष कुमार, अ.सा. 5 के से स्थापित और सिद्ध हो चुकी है। चोट 1 गोली लगने से लगी है। इसलिए, अ.सा. 1 और अ.सा. 2 – जो गोलीबारी के चक्षुदर्शी साक्षी थे – के विश्वसनीय चाक्षुष साक्ष्य को अस्वीकार करना संभव नहीं है। अ.सा. 1 और अ.सा. 2 के न्यायालयीन कथन की विश्वसनीयता पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि ए-1 ने मृतक को बंदूक से गोली मारी, विशेषतया जब इसकी। संपुष्टि शरीर में लगी गोली से होती है और अ.सा. 2 और अ.सा. 5 के साक्ष्य से भी होती है। अतः केवल इसलिए कि बैलिस्टिक रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि बरामद गोली बरामद बंदूक से मेल नहीं खाती, अ.सा. 1 और अ.सा. 2 के विश्वसनीय और भरोसेमंद कथन को अस्वीकार करना संभव नहीं है।

(बल दिया गया)

71. इस संदर्भ में, इस न्यायालय के **करमजीत सिंह विरुद्ध राज्य (दिल्ली प्रशासन)**, (2003) 5 एससीसी 291 के निर्णय का भी संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें यह अवधारित किया गया था कि वस्तुओं की बरामदगी में शामिल पुलिसकर्मियों के अभिसाक्ष्य पर अविश्वास नहीं किया जाना चाहिए और पुलिसकर्मियों के अभिसाक्ष्य को किसी अन्य साक्षी के अभिसाक्ष्य के समान ही माना जाना चाहिए। यह अभिनिर्धारित किया गया कि,

“8. अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सिन्हा ने पूरजोर आग्रह किया है कि अभियोजन द्वारा परीक्षित समस्त साक्षी पुलिसकर्मी हैं और किसी भी लोक साक्षी की अनुपस्थिति में, केवल उनके साक्ष्य को अपीलार्थी की दोषसिद्धि को यथावत रखने हेतु पर्याप्त नहीं माना जाना चाहिए। हमारी राय में, उठाया गया तर्क बहुत व्यापक रूप से प्रस्तुत किया गया है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। पुलिस कर्मियों के अभिसाक्ष्य को किसी अन्य साक्षी के अभिसाक्ष्य के समान ही माना जाना चाहिए और ऐसा कोई विधिक सिद्धांत नहीं है कि स्वतंत्र साक्षियों द्वारा संपुष्टि के बिना उनके साक्ष्य का अवलंब नहीं लिया जा सकता। यह परिकल्पना कि एक व्यक्ति ईमानदारी से कार्य करता है, एक पुलिसकर्मी के पक्ष में उतना ही लागू होता है जितना कि अन्य व्यक्तियों के पक्ष में और बिना किसी ठोस आधार के उन पर अविश्वास करना और संदेह करना उचित न्यायिक दृष्टिकोण नहीं है। यह सब प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और सामान्य अनुप्रयोग का कोई सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया जा सकता।”

(बल दिया गया)

इस प्रकार, हमें पुलिस/विवेचना अधिकारी (अ.सा.-15) के साक्ष्य पर संदेह करने का कोई कारण नहीं मिलता।

72. यह विचार करने योग्य है कि बचाव पक्ष का अभिवचन पूर्णतः इनकार करने वाला है। अपीलार्थीगण ने घटना के बारे में पूर्णतः अनभिज्ञता का भी दावा किया है। उनका अभिवाक है कि वे घटना के समय गाँव में नहीं थे और दिनांक 22.9.2001 को नयापारा स्थित एक अन्य स्थान पर चम्पा लाल साहू नामक व्यक्ति के गृह प्रवेश समारोह में शामिल होने के लिए गए थे और दिनांक 23.09.2001 की शाम

को ही लौटे थे। यद्यपि, बचाव पक्ष ने अन्यत्र उपस्थित होने के अभिवाक के बारे में कोई साक्ष्य नहीं दिया।

अपीलार्थीगण ने रमेश कुमार वर्मा, अ.सा.-9 पर हमले का आरोप लगाने का भी प्रयत्न किया, जो पूर्णतः असफल रहा।

उन्होंने यह भी तर्क किया कि अभियोजन साक्षियों, विशेषतया अ.सा.-10, को पुलिस ने अभियुक्तों को झूठा फंसाने के लिए विवश किया था, जिसके समर्थन में अपीलार्थीगण ने दो बचाव पक्ष के साक्षी प्रस्तुत किए थे। यद्यपि, हमें उनके साक्ष्य अविश्वसनीय प्रतीत होते हैं, जैसा कि उच्च न्यायालय ने भी अभिनिर्धारित किया है।

73. हमने अन्य पड़ोसियों के साक्ष्य पर भी विचार किया है, जिन्हें हम अत्यंत अस्वाभाविक और असत्य प्रतीत होते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपीलार्थीगण की रक्षा के लिए सत्यता प्रकट करने में अनिच्छुक हैं।

श्याम बाई, अ.सा.-3, जिनके बारे में अ.सा.-6, शिकायतकर्ता और दोनों पति-पत्नी, अ.सा.-5 और अ.सा.-10 (मृतक के माता-पिता) ने उल्लेख किया था कि वे घटनास्थल पर उपस्थित थे, ने सूरज की मृत्यु के कारण के बारे में अनभिज्ञता जताई और धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन दर्ज अपने पूर्ववर्ती कथन का समर्थन नहीं किया, जिसमें उन्होंने अपीलार्थीगण को हमलावर बताया था। प्रतिपरीक्षण में, उन्होंने कथन किया कि जब वह स्नान करने के बाद आई, तो उसने सूरज के माता-पिता को आहत को रिवशे में ले जाते हुए देखा और शरीर पर रक्त देखा, परंतु उसने यह नहीं पूछा कि आहत को चोटें कैसे आईं। यह तर्क के विरुद्ध है और मानवीय प्रवृत्ति और स्वभाव के विपरीत प्रतीत होता है कि जब कोई व्यक्ति अपने पड़ोसी को गंभीर रूप से आहत अवस्था में देखता है, तो चोट के बारे में कोई पूछताछ नहीं करता। अ.सा.-3 स्पष्ट रूप से सत्य नहीं कह रही है।

74. यही प्रकरण रमेश कुमार वर्मा, अ.सा.-9, जिनके घर के सामने यह घटना घटित हुई और जो मृतक के निकटतम पड़ोसी हैं, का भी है। अ.सा.-5 और अ.सा.-10 दोनों ने उन्हें घटनास्थल और घटना के समय उपस्थित बताया है। यद्यपि, उन्होंने स्पष्ट रूप से कथन किया है कि उन्हें घटना की कोई जानकारी नहीं थी और उन्होंने न तो देखा था और न ही सुना था कि पीड़ित के साथ क्या हुआ। यह बहुत ही अजीब और अविश्वसनीय है कि यद्यपि उन्होंने अपने बगीचे के कोने में रक्त फैला हुआ देखना स्वीकार किया, परंतु उन्होंने इसके बारे में कोई पूछताछ नहीं की। उन्होंने कथन किया कि उन्होंने अखबार में एक लड़के की मृत्यु की खबर पढ़ी और उन्हें सूरज को लगी चोटों के बारे में अखबार से ज्ञात हुआ और उन्हें इस बारे में कोई जानकारी नहीं थी कि सूरज की हत्या किसने की। उन्होंने यह

भी स्वीकार किया कि वह शराब पीते हैं और चिंताराम उनके साथ शराब पीता था और आज तक चिंताराम के साथ उनके अच्छे संबंध हैं।

दिलचस्प बात यह है कि अपीलार्थीगण ने अ.सा.-10 को निराधार सुझाव दिया कि वर्मा (अ.सा.-9) और उसके परिवार ने वास्तव में मृतक पर हमला किया था।

हम केवल यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अ.सा.-9 का कथन असत्य है, अत्यधिक अप्राकृतिक है और सामान्य मानवीय प्रवृत्ति और व्यवहार के विपरीत है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह चिंताराम से प्रभावित था क्योंकि वह शराब पीने में उसका निकटतम परिचित था, जिस रिश्ते को उसने प्रतिपरीक्षण में स्वीकार किया था।

75. इन पड़ोसियों की न्यायालय के समक्ष दिए गए अभिसाक्ष्य की अस्वाभाविकता के कारण, जो मानवीय व्यवहार के विरुद्ध है, यह युक्तियुक्त निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन साक्षियों को अपने पक्ष में कर लिया गया है। यह तथ्य कि इन सभी साक्षियों का गांजा सेवन के कारण चिंताराम के साथ घनिष्ठ संबंध था, यह भी स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि वर्तमान दोनों अपीलार्थीगण के दोषमुक्त पिता चिंताराम का इन साक्षियों पर कितना प्रभाव हो सकता है।

76. यद्यपि, यह भी विचार करने योग्य है कि केवल इसलिए कि साक्षी पक्षद्रोही हो जाते हैं, इसका यह अनिवार्य रूप से अर्थ यह नहीं है कि उनके साक्ष्य को पूर्णतः खारिज किया जाना चाहिए और अभियोजन के समर्थन में जो साक्ष्य हैं उनका ही उपयोग किया जाना चाहिए। **गंगाधर बेहरा विरुद्ध उड़ीसा राज्य (2002) 8 एससीसी 381** में, निम्नानुसार अवधारित किया:—

“15. पंजाब राज्य विरुद्ध जागीर सिंह [(1974) 3 एससीसी 277 : 1973 एससीसी (क्रि) 886] और लहना विरुद्ध हरियाणा राज्य [(2002) 3 एससीसी 76 : 2002 एससीसी (क्रि) 526] का निर्णय भी इसी प्रभाव का है। अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा कुछ साक्षियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को अस्वीकार करने पर बल दिया गया था, जिससे अभियोजन के पूरे प्रकरण को खारिज करने की वांछनीयता का तर्क किया गया था। संक्षेप में, प्रार्थना का प्रयोजन फाल्सस इन यूनो, फाल्सस इन ऑम्निबस (एक बात में झूठ, हर बात में झूठ) के सिद्धांत को लागू करना है। यह अभिवचन स्पष्ट रूप से असमर्थनीय है। भले ही साक्ष्य का एक वृहद भाग अपर्याप्त पाया जाता है, यदि अवशेष किसी अभियुक्त के अपराध को साबित करने के लिए पर्याप्त हैं, कई अन्य सह-अभियुक्तों को दोषमुक्त किए जाने के बावजूद, दोषसिद्धि

यथावत रखा जा सकता है। अनाज को भूसे से अलग करना न्यायालय का कर्तव्य है। जहाँ भूसे को अनाज से अलग किया जा सकता है, वहाँ न्यायालय किसी अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए स्वतंत्र होगा, भले ही अन्य अभियुक्तों का अपराध सिद्ध करने के लिए साक्ष्य अपर्याप्त पाए गए हों। किसी विशेष महत्वपूर्ण साक्षी या महत्वपूर्ण विवरण का झूठा होना उसे शुरु से अंत तक बर्बाद नहीं करेगा। "एक बात में झूठ, हर बात में झूठ" वाली कहावत भारत में लागू नहीं होती और साक्षियों को झूठा नहीं कहा जा सकता। "एक बात में झूठ, हर बात में झूठ" वाली कहावत को सामान्य स्वीकृति नहीं मिली है और न ही यह कहावत विधि के नियम का दर्जा प्राप्त कर पाई है। यह केवल सावधानी का नियम है। इसका तात्पर्य केवल यह है कि ऐसे प्रकरणों में साक्ष्य को अनदेखा किया जा सकता है, न कि इसे अनदेखा किया जाना चाहिए। इस सिद्धांत में केवल साक्ष्य के भार का प्रश्न अन्तर्वलित है जिसे न्यायालय किसी निश्चित परिस्थिति में लागू कर सकता है, परंतु इसे वह नहीं कहा जा सकता 'साक्ष्य का एक अनिवार्य नियम'। (देखें निसार अली विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य [एआईआर 1957 एससी 366: 1957 क्रि एलजे 550]) केवल इसलिए कि कुछ अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया गया है, यद्यपि उन सभी के विरुद्ध साक्ष्य, जहाँ तक प्रत्यक्ष साक्ष्य का प्रश्न है, एक जैसे थे, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जिन लोगों को दोषसिद्ध किया गया है, उन्हें भी दोषमुक्त कर दिया जाना चाहिए। न्यायालय का यह सदैव कर्तव्य होता है कि वह दोषमुक्त अभियुक्तों और दोषसिद्ध अभियुक्तों के बीच अंतर करे। (देखें गुरचरण सिंह विरुद्ध पंजाब राज्य [एआईआर 1956 एससी 460: 1956 क्रि एलजे 827]) यह सिद्धांत विशेष रूप से भारत में नुकसानदायक है क्योंकि यदि किसी साक्षी के किसी पहलू में स्पष्ट रूप से असत्य बोलने के कारण सम्पूर्ण साक्ष्य को खारिज कर दिया जाए, तो यह आशंका है कि दायिद्विक न्याय प्रशासन ठप हो जाएगा। साक्षी किसी कहानी को, चाहे वह मूलतः सत्य ही क्यों न हो, बुनने में सहायता नहीं कर सकते। इसलिए, प्रत्येक प्रकरण में यह मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि साक्ष्य किस सीमा तक स्वीकार करने योग्य है, और केवल इसलिए कि कुछ प्रकरणों में न्यायालय उसे किसी साक्षी के साक्ष्य का अवलंब करने के लिए अपर्याप्त मानता है, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि विधि उसे सभी प्रकरणों में अनदेखा कर दिया जाना चाहिए। साक्ष्य को सावधानीपूर्वक परखा जाना चाहिए। उपरोक्त कथन एक ठोस नियम नहीं है क्योंकि शायद ही कोई ऐसा साक्षी मिले जिसके साक्ष्य में असत्य का अंश न हो या कम से कम अतिशयोक्ति, बनावटीपन या अलंकरण न हो। (देखें सोहराब विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य [(1972) 3 एससीसी 751: 1972 एससीसी (क्रि) 819] और उग्र अहीर

विरुद्ध बिहार राज्य [एआईआर 1965 एससी 277: (1965) 1 क्रि एलजे 256]) जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, एक उपयुक्त रूपक के रूप में, अनाज को भूसे से, सत्य को असत्य से अलग करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। जहाँ सत्य को असत्य से अलग करना संभव नहीं है, क्योंकि अनाज और भूसा अभिन्न रूप से मिश्रित हैं, और पृथक्करण की प्रक्रिया में अभियोजन द्वारा प्रस्तुत आवश्यक विवरणों को संदर्भ और पृष्ठभूमि से पूरी तरह अलग करके एक बिल्कुल नए प्रकरण का पुनर्निर्माण करना पड़ता है जिसके विरुद्ध उन्हें बनाया गया है, वहाँ एकमात्र उपलब्ध उपाय साक्ष्य को पूर्णतः खारिज करना है। (ज्विंगली एरियल विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य [(1952) 2 एससीसी 560: एआईआर 1954 एससी 15: 1954 क्रि एलजे 230] और बालाका सिंह विरुद्ध पंजाब राज्य [(1975) 4 एससीसी 511: 1975 एससीसी (क्रि) 601] देखें।) जैसा कि इस न्यायालय ने राजस्थान राज्य विरुद्ध कल्कि [(1981) 2 एससीसी 752: 1981 एससीसी (क्रि) 593] में अभिनिर्धारित किया है, साक्ष्य में सामान्य विसंगतियाँ वे हैं जो सामान्य अवलोकन की त्रुटियों, समय बीतने के कारण स्मृति की सामान्य त्रुटियों, घटना के समय सदमे और भय जैसी मानसिक प्रवृत्ति के कारण होती हैं और ये हमेशा मौजूद रहती हैं, चाहे कोई साक्षी कितना भी ईमानदार और सत्यनिष्ठ क्यों न हो। महत्वपूर्ण विसंगतियाँ वे हैं जो सामान्य नहीं हैं, और एक सामान्य व्यक्ति से अपेक्षित नहीं हैं। न्यायालयों को उस श्रेणी को चिह्नित करना होता है जिसमें किसी विसंगति को वर्गीकृत किया जा सकता है। यद्यपि सामान्य विसंगतियाँ किसी पक्ष के प्रकरण की विश्वसनीयता को कम नहीं करतीं, परंतु महत्वपूर्ण विसंगतियाँ ऐसा करती हैं। इन पहलुओं को हाल ही में कृष्णा मोची विरुद्ध बिहार राज्य [(2002) 6 एससीसी 81: 2002 एससीसी (क्रि) 1220] में उजागर किया गया था। इस प्रकरण में अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध आरोप स्पष्ट रूप से स्थापित हो चुके हैं। निम्न न्यायालयों ने जहाँ तक दोषमुक्त और दोषी अभियुक्तों का संबंध है, साक्ष्य में विशिष्ट विशेषताओं को स्पष्ट रूप से इंगित किया है।”

77. राजा विरुद्ध कर्नाटक राज्य, (2016) 10 एससीसी 506 में भी इसी प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था:

“32. किसी भी स्थिति में किसी पक्षद्रोही साक्षी का साक्ष्य पूर्णतः मिटाया नहीं जाना चाहिए और उसे उस सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है जहाँ तक सावधानीपूर्वक जाँच करने पर वह विश्वसनीय पाया जाता है, इस बात को इस

न्यायालय ने हिमांशु [हिमांशु विरुद्ध राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), (2011) 2 एससीसी 36 : (2011) 1 एससीसी (क्रि) 593] में दोहराया था, जिसमें खुज्जी विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य [खुज्जी विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य, (1991) 3 एससीसी 627 : 1991 एससीसी (क्रि) 916] और कोली लखमनभाई चनाभाई विरुद्ध गुजरात राज्य [कोली लखमनभाई चनाभाई विरुद्ध गुजरात राज्य, (1999) 8 एससीसी 624 : 2000 एससीसी (क्रि) 13] यह उद्धोषित किया गया कि एक पक्षद्रोही साक्षी का साक्ष्य ग्राह्य है और न्यायालय इसके विश्वसनीय भाग का अवलंब ले सकता है, जो ग्राह्य पाया गया है और अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य विश्वसनीय साक्ष्यों द्वारा विधिवत संपुष्टि की गई है।”

78. हम विधि की इस स्थिति को भी विचार में रखते हैं कि अभियोजन को या तो अपने पैरों पर खड़ा होना होगा या गिरना होगा और उसे बचाव पक्ष की कमजोरी से कोई ताकत नहीं मिल सकता। यद्यपि, वर्तमान प्रकरण में, पड़ोसियों की असत्य और कपटपूर्ण अभिसाक्ष्य के बावजूद, अभियोजन अपने प्रकरण को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करने में सक्षम रहा है और अपीलार्थीगण की झूठा अभिवाक अभियोजन के प्रकरण को और मज़बूत करता है।

79. ऐसा कोई ठोस कारण या सामग्री अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं है जिसके आधार पर यह न्यायालय यह धारणा बनाए कि लता बाई (अ.सा.-10) ने वास्तव में अपीलार्थीगण द्वारा पीड़िता पर किए गए हमले को नहीं देखा था। केवल इसलिए कि धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन उसका कथन विलम्ब से दर्ज किया गया था, अर्थात् पाँच दिवस उपरांत, जिस पर उच्च न्यायालय द्वारा विधिवत विचार किया गया था और विचारण न्यायालय के समक्ष उसके साक्ष्य में कुछ विसंगतियाँ और अलंकरण हैं, हम यह मानने के लिए सहमत नहीं हैं कि अ.सा.-10 चक्षुदर्शी साक्षी नहीं हो सकती और उसके साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है।

बचाव पक्ष द्वारा अ.सा.-10 से गहन और व्यापक प्रतिपरीक्षण किया गया, फिर भी उसके साक्ष्य को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित नहीं किया जा सका, सिवाय साधारण विसंगतियों की ओर इंगित करने के।

न्यायालय के समक्ष उसके द्वारा दिए गए कथन और धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन दर्ज किए गए पूर्ववर्ती कथन के मध्य कोई भी महत्वपूर्ण विरोधाभास बचाव पक्ष द्वारा धारा 162 (1) और उसके स्पष्टीकरण के अधीन नहीं दिखाया जा सका जिससे उसके साक्ष्य संदिग्ध हो।

अ.सा.-10 के साक्ष्य का ध्यानपूर्वक परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि घटना का उसका वर्णन स्वाभाविक और विश्वसनीय था।

80. अपीलार्थीगण ने यह भी तर्क दिया था कि अ.सा.-10 एक हितबद्ध साक्षी थी और उसके साक्ष्य विश्वसनीय नहीं हो सकती। इस संबंध में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अ.सा.-10, जो मृतक की माँ थी यद्यपि वह पीड़िता की रिश्तेदार थी, किसी भी प्रकार से उसे हितबद्ध साक्षी नहीं कहा जा सकता। "हितबद्ध साक्षी" और "संबद्ध साक्षी" कौन है, यह इस न्यायालय द्वारा **मोहम्मद रोज़ाली अली विरुद्ध असम राज्य, (2019) 19 SCC 567** के प्रकरण में संक्षेप में समझाया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि:

“13. इस तर्क के संबंध में कि सभी चक्षुदर्शी साक्षी मृतक के निकट रिश्तेदार हैं, अब यह सुस्थापित है कि किसी संबद्ध साक्षी को केवल पीड़ित का रिश्तेदार होने के आधार पर "हितबद्ध" साक्षी नहीं कहा जा सकता। इस न्यायालय ने कई प्रकरणों में "हितबद्ध" और "संबंधित" साक्षियों के मध्य अंतर को स्पष्ट किया है, जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी साक्षी को हितबद्ध तभी कहा जा सकता है जब उसे किसी विचारण के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त होता हो, जिसका एक दायित्व प्रकरण के संदर्भ में अभिप्रेत यह होगा कि साक्षी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अभियुक्त को पूर्व शत्रुता या अन्य कारणों से दण्डित होते देखने में हित है, और इस प्रकार उसका अभियुक्त को झूठा फंसाने का आशय है (उदाहरण के लिए, देखें राजस्थान राज्य विरुद्ध कल्कि [राजस्थान राज्य विरुद्ध कल्कि, (1981) 2 एससीसी 752 : 1981 एससीसी (क्रि) 593]; अमित विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य। [अमित विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 4 एससीसी 107 : (2012) 2 एससीसी (क्रि) 590] ; और गंगाभवानी विरुद्ध रायपति वेंकट रेड्डी [गंगाभवानी विरुद्ध रायपति वेंकट रेड्डी, (2013) 15 एससीसी 298 : (2014) 6 एससीसी (क्रि) 182])। हाल ही में, गणपति विरुद्ध तमिलनाडु राज्य [गणपति विरुद्ध तमिलनाडु राज्य, (2018) 5 एससीसी 549 : (2018) 2 एससीसी (क्रि) 793] में इस अंतर को निम्नलिखित शब्दों में दोहराया गया है, राजस्थान राज्य विरुद्ध कल्कि में तीन-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय का संदर्भ देते हुए [राजस्थान राज्य विरुद्ध कल्कि, (1981) 2 एससीसी 752: 1981 एससीसी (सीआरआई) 593] : (गणपति प्रकरण

[गणपति विरुद्ध टी.एन. राज्य, (2018) 5 एससीसी 549: (2018) 2 एससीसी (सीआरआई) 793], एससीसी पी। 555, पैरा 14)

“26. एक साक्षी को आम तौर पर स्वतंत्र माना जाता है, जब तक कि वह ऐसे स्रोतों से न आए जो दूषित होने की संभावना रखते हों और इसका तात्पर्य आमतौर पर यह होता है कि जब तक साक्षी के पास अभियुक्त के विरुद्ध शत्रुता जैसे कोई कारण न हों, जिससे वह उसे झूठा फंसाना चाहता हो। आमतौर पर कोई निकट रिश्तेदार वास्तविक अपराधी को छुपाने और किसी निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाने वाला अंतिम व्यक्ति होता है।”

15. संबंधित साक्षियों के प्रकरण में, न्यायालय के साक्ष्य को निष्पक्ष रूप से ठोस रूप में नहीं माना जा सकता है, और उसे केवल यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि स्वाभाविक रूप से विश्वसनीय, ठोस, पूरक और महत्वपूर्ण हो। हम जयबालन विरुद्ध राज्य (पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र) [जयबालन विरुद्ध राज्य (पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र क्षेत्र) (2010) 1 एससीसी 199: (2010) 2 एससीसी (क्रि) 966] में इस न्यायालय की टिप्पणियों का संदर्भ ले सकते हैं: (एससीसी) पृष्ठ 213, पैरा 23)

“23. हमारा यह सुविचारित अभिमत है कि जिन प्रकरणों में न्यायालय को हितबद्ध साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करने के लिए कहा जाता है, ऐसे साक्षियों के साक्ष्य की विवेचना करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण पांडित्यपूर्ण नहीं होना चाहिए। न्यायालय को हितबद्ध साक्षियों द्वारा किए गए साक्ष्य की विवेचना और स्वीकार करने में सावधानी बरतनी चाहिए, परंतु न्यायालय को ऐसे साक्ष्य पर संदेह नहीं करना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयत्न संगति की खोज करना होना चाहिए। किसी साक्षी के साक्ष्य को केवल इसलिए कि वह किसी ऐसे व्यक्ति के मुँह से निकला है जो पीड़ित का निकट संबंधी है अनदेखा या खारिज नहीं किया जा सकता।”

81. जैसा कि उच्च न्यायालय ने भी अवधारित किया है, हमें कोई कारण नहीं दिखता कि पीड़िता की माँ बिना किसी तर्क या कारण के अपीलार्थीगण को झूठा फंसाए, विशेषतया तब जब स्पष्टतः माँ लता बाई की किसी भी अपीलार्थी से कोई पूर्व शत्रुता नहीं थी।

लता बाई, अ.सा.-10 निश्चित रूप से एक हितबद्ध साक्षी नहीं है, भले ही वह पीड़िता की रिश्तेदार थी और इस आधार पर उसके साक्ष्य पर आपत्ति नहीं की जा सकती।

82. हमें यह भी स्मरण में रखना चाहिए कि, लता बाई अ.सा.-10 के अभिसाक्ष्य दर्ज करते समय, विचारण न्यायालय ने साक्षी के आचरण पर विचार किया था। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 280 न्यायाधीश को निर्देशित करती है कि वह साक्षी के आचरण के संबंध में परीक्षण करते समय ऐसी टिप्पणियाँ दर्ज करें जो उसे महत्वपूर्ण लगें क्योंकि यह आचरण साक्षी की सत्यता और विश्वसनीयता के बारे में अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता है, जो प्रस्तुत साक्ष्य के आकलन हेतु न्यायालय के लिए महत्वपूर्ण हैं, जिन्हें अपीलीय न्यायालय द्वारा अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।

विचारण न्यायालय ने अपने मुख्य परीक्षण के पैरा 2 में उल्लेख किया कि साक्षी साक्ष्य देते समय रो रही थी कि उसके पुत्र के शरीर पर कई चोटें थीं और उसके दाहिने कान के नीचे गंभीर चोटें थीं और रक्तस्राव हो रहा था। उसने कथन किया कि फिर उसने पुलिस की सहायता से उसे गोद में उठाया और एक रिक्शे में अस्पताल ले गई।

83. विचारण न्यायालय ने अ.सा.-10 के साक्ष्य दर्ज करने और उस पर विचार करने के बाद उसके साक्ष्य को विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया। हमें विचारण न्यायालय द्वारा साक्षी की विश्वसनीयता के आकलन पर प्रश्न उठाने का कोई कारण नहीं दिखता, क्योंकि उसे साक्षी और अन्य सभी साक्षियों से बेहतर देखने और सुनने का लाभ प्राप्त था। हमारे संज्ञान में किसी भी गंभीर अवैधता या मूलभूत विधि के उल्लंघन का कोई प्रकरण नहीं लाया गया है जिससे अ.सा.-10 के साक्ष्य पर अलग दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता हो।

इस संबंध में हम इस न्यायालय द्वारा **जगदीश सिंह विरुद्ध माधुरी देवी, (2008)10 एससीसी 497** में निम्नलिखित शब्दों में की गई मूल्यवान टिप्पणियों को विचार में रख सकते हैं:

“28. साथ ही, अपीलीय न्यायालय से अपेक्षा की जाती है, बल्कि बाध्य भी, कि वह मौखिक साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष को विचार में रखे। उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि विचारण न्यायालय के पास साक्षियों के व्यवहार को देखने का लाभ और अवसर था, और इसलिए, विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को सामान्यतः प्रभावित नहीं किया जाना चाहिए। निस्संदेह, अपीलीय न्यायालय के पास मूल न्यायालय के समान ही शक्तियाँ हैं, परंतु उनका प्रयोग उचित सावधानी, सतर्कता और विवेक के साथ किया जाना चाहिए। जब विचारण न्यायालय द्वारा मुख्य रूप से मौखिक साक्ष्य की विवेचना के आधार पर तथ्य का निष्कर्ष अभिलिखित किया गया

हो, तो उसमें सामान्यतः हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए, जब तक कि साक्ष्य की विवेचना में विचारण न्यायालय का दृष्टिकोण दोषपूर्ण, विधि के सुस्थापित सिद्धांतों के विपरीत या अनुचित न हो।

29.

30. सारा वीरास्वामी विरुद्ध तल्लूरी नारायण [(1947-48) 75 आई ए 252 : एआईआर 1949 पीसी 32] में, प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति ने इस विवाद्यक पर सुसंगत निर्णयों का उल्लेख करने के उपरान्त, व्यक्त किया [वाट विरुद्ध थॉमस, (1947) 1 ऑल इआर 582, पृष्ठ 583 एच-584 ए. से उद्धृत] : (आई ए पृष्ठ 255)

"... परंतु यदि समग्र साक्ष्य को यथोचित रूप से विचारण में निकाले गए निष्कर्ष को युक्तियुक्त ठहराने वाला माना जा सकता है, और विशेष रूप से यदि वह निष्कर्ष एक ऐसे अधिकरण द्वारा परस्पर विरोधी अभिसाक्ष्य के आधार पर निकाला गया है जिसने साक्षियों को देखा और सुना है, तो अपीलीय न्यायालय यह विचार में रखेगा कि उसे यह अवसर प्राप्त नहीं हुआ है और विश्वसनीयता के बारे में विचारण न्यायाधीश का दृष्टिकोण बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रथम दृष्टया न्यायाधीश को यह निर्धारित करने में अचूक माना जा सकता है कि कौन सा पक्ष सत्य बोल रहा है या अतिशयोक्ति से बच रहा है। अन्य अधिकरणों की तरह, वह तथ्य के किसी प्रश्न पर गलत हो सकता है, परंतु यह एक ठोस परिस्थिति है कि अभिसाक्ष्य के मूल्य का आकलन करते समय प्रथम दृष्टया न्यायाधीश को यह लाभ होता है (जो अपीलीय न्यायालयों को नहीं मिलता) कि वह साक्षियों को अपने समक्ष प्रस्तुत करवा सके और उनके साक्ष्य देने के तरीके का अवलोकन कर सके।"

84. उपरोक्त के दृष्टिगत, हमारा अभिमत है कि भले ही कुछ अलंकरण, सुधार और विरोधाभास हों, जो साधारण प्रकृति के हों, फिर भी अ.सा.-10 का साक्ष्य समग्र रूप से सुसंगत प्रतीत होता है और हमें उसके इस दावे पर अविश्वास करने का कोई ठोस कारण नहीं दिखता कि उसने घटना देखी थी। इस प्रकार, हमारा अभिमत है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण में कोई स्पष्ट अवैधता नहीं है।

85. हम यह भी मानते हैं कि सिर्फ इसलिए कि अपीलार्थीगण के पिता चिंताराम को दोषमुक्त कर दिया गया, उन्हें दोषमुक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि उनके खिलाफ प्रकरण को युक्तियुक्त संदेह से परे

साबित करने के लिए पर्याप्त और ठोस साक्ष्य उपलब्ध हैं, जबकि दोषमुक्त चिंताराम के खिलाफ प्रकरण संदिग्ध है।

चूँकि पिता को दोषमुक्त किए जाने के विरुद्ध कोई अपील नहीं की गई है, अतः हम चिंताराम को बाद में दोषमुक्त किए जाने के प्रकरण में नहीं जाना चाहते।

उच्च न्यायालय ने उल्लेख किया था कि, अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों की गहन विवेचना करने पर, इस बात का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता कि चिंताराम ने हमले में शामिल था और उसका नाम प्र.पी./1 में नहीं है, जो घटना के तुरंत बाद पुलिस द्वारा आहत को सामुदायिक अस्पताल, तिल्दा रेफर करने के लिए तैयार किया गया था और अ.सा.-10 के साक्ष्य में भी नहीं है कि उसने अपीलार्थीगण का नाम लेते समय पुलिस थाने में उसकी उपस्थिति का उल्लेख नहीं किया था। हमारा अभिमत है कि चिंताराम की भूमिका स्पष्ट रूप से सामने नहीं आती है जिससे अपीलार्थीगण के साथ-साथ उस पर भी आपराधिक दायित्व अधिरोपित किया जा सके। इस प्रकार, वर्तमान दो अपीलार्थीगण को दोषमुक्त अभियुक्त, चिंताराम के प्रकरण के समकक्ष नहीं रखा जा सकता।

86. पंजाब राज्य विरुद्ध सुच्चा सिंह (पूर्वोक्त) प्रकरण की प्रयोज्यता के संबंध में, जिसमें इस न्यायालय ने पाया कि पीड़ित पुत्र को बचाने में पिता की निष्क्रियता संबंधित है, यह विचार करने योग्य है कि, उक्त प्रकरण के विपरीत, जो साक्ष्य सामने आए हैं, वे यह हैं कि पिता, अ.सा.-5, हमलावर अपीलार्थीगण के भाग जाने के बाद घटनास्थल पर आया था। अतः उसके हस्तक्षेप का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि **सुच्चा सिंह** (पूर्वोक्त) का उक्त प्रकरण अपीलार्थी द्वारा किए गए तर्क के अनुसार लागू होता है, तो इसका अभिप्रेत यह होगा कि पिता, अ.सा.-5 ने साक्ष्य दिया होगा, जो उनके अपने प्रकरण के विरुद्ध है।

जहाँ तक माँ अ.सा.-10 का प्रश्न है, हमला होते देख वह अपने पति को जगाने के लिए अंदर भागी और जब वे बाहर आए, तो हमलावर भाग चुके थे। यह बिल्कुल भी अस्वाभाविक नहीं माना जा सकता कि एक महिला जब घातक हथियारों से लैस दो व्यक्ति उस पर हमला कर रहे थे, तब उसने हस्तक्षेप करने की बजाय एक पुरुष (अपने पति) की सहायता ली।

87. निष्कर्षतः, हमारा मानना है कि एकमात्र चक्षुदर्शी साक्षी, एक अभागी, अशिक्षित नारी, जिसने अपनी आँखों के सामने अपने पुत्र पर सह-ग्रामीणों द्वारा जानलेवा हमला किए जाने की त्रासदी देखी, का साक्ष्य गहन प्रतिपरीक्षण और न्यायिक जाँच में खरी उतरी है। उसने प्रतिपरीक्षण के दौरान पूछे गए प्रश्नों का सहजता से, बिना किसी घबराहट के, उत्तर दिया है और उसकी प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी, न कि अस्पष्ट और टालमटोल वाली, जो सभी साक्षी की सत्यनिष्ठा के संकेत हैं। इसलिए, हमें यह मानने में

कोई संकोच नहीं है कि उसके साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद है। उसके साक्ष्य शिकायतकर्ता और उसके पति के साक्ष्य के ग्राह्य भाग, भले ही वह पक्षद्रोही हो गए हों, और चिकित्सा साक्ष्य, विवेचना अधिकारी और अन्य आधिकारिक साक्षियों के साक्ष्य से संपुष्ट होती है।

88. वर्तमान प्रकरण में, हम इस बात से संतुष्ट हैं कि अभिलेखों से स्पष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, अभियोजन बिना किसी संदेह के यह स्थापित करने में सक्षम रहा है कि अपीलार्थी मृतक सूरज की मृत्यु के लिए जिम्मेदार थे, जिसके लिए उन्हें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया था।

89. हमें विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों में कोई स्पष्ट अवैधता या विकृति नहीं दिखती जिससे अपीलार्थीगण के साथ कोई घोर अन्याय हुआ हो।

90. यद्यपि, हमारे इस निष्कर्ष के बावजूद कि अपीलार्थीगण ने मृतक पर घातक हथियारों से हमला किया था जिससे उसकी मृत्यु हो गई, हमने पाया है कि मृतक की मृत्यु तुरंत नहीं हुई थी। वह कुछ दिनों तक इस क्रूर हमले से बच गया और बाद में चोटों के कारण उसकी मृत्यु हो गई। मृतक पर दिनांक 23.9.2001 की सुबह हमला किया गया था और दिनांक 25.9.2001 की रात को उसकी मृत्यु हो गई।

चिकित्सक, डॉ. जी. आर. अग्रवाल, अ.सा.-1, ने कथन किया कि चोटें क्रमांक (i), (vi), (viii) और (ix) लोहे के पाइप के कारण हो सकती हैं और इन्हें गंभीर नहीं बताया गया। दूसरी ओर, अन्य चोटें क्रमांक (ii), (iii), (iv), (v) और (vii) को सिर की गंभीर चोटें बताया गया जो टंगिया के कारण हो सकती हैं। मृतक की बाद में इन सिर की चोटों के संचित प्रभाव के कारण मृत्यु हो गई, जैसा कि अ.सा.-13, डॉ. अरविंद नेरलवार, जिन्होंने मृतक का शवपरीक्षण किया था, ने साक्ष्य दिया। उनके अनुसार मृत्यु का कारण सिर की चोटों के कारण कोमा था। यदि हम इन चोटों का सुक्ष्मतापूर्वक परीक्षण करें, तो यह देखा जाता है कि यद्यपि सिर पर लगी चोटों को गंभीर माना गया था, ये त्वचा की गहरी चोटों के रूप में दिखाई गई हैं और किसी विशेष चोट को घातक नहीं माना गया है। चूंकि मृत्यु का कारण सिर की चोटों के कारण कोमा को माना गया और यह अभिमत दिया गया कि सामान्य प्रकृति में ये चोटें मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि यह इन सिर की चोटों का संचयी प्रभाव है।

यह भी अवधारणीय है कि चोटों के कारण उसकी मृत्यु तत्काल नहीं हुई बल्कि घटना के तीसरे दिन उसकी मृत्यु हुई।

यह भी विचार करने योग्य है कि जिन परिस्थितियों में हमला हुआ और अपीलार्थीगण द्वारा चोट पहुँचाने का कारण और हमले के पीछे का आशय स्पष्ट रूप से सामने नहीं आया है। यहाँ तक कि एकमात्र चक्षुदर्शी साक्षी, मृतक की माँ, लता बाई (अ.सा.-10) ने भी साक्ष्य दिया कि उसका पुत्र अभियुक्तों से मिलने-जुलने का इच्छुक था क्योंकि वे एक ही क्षेत्र में रहते थे और वह यह नहीं बता सकती कि अचानक झगड़ा क्यों हुआ। यह स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं हुआ है कि यह पूर्वनियोजित था और हमला मृतक को मारने के आशय से पूर्व नियोजित था। अपीलार्थीगण और मृतक के बीच कोई पूर्व शत्रुता स्थापित नहीं हुई है। इस प्रकार, अपराध करने का आशय स्पष्ट रूप से स्थापित और सिद्ध नहीं हुआ है।

91. यद्यपि, यह बिना किसी युक्तियुक्त संदेह के परे स्थापित हो जाता है कि अपीलार्थीगण ने मृतक की हत्या यह पूरी तरह जानते हुए कारित की थी कि अपीलार्थीगण द्वारा पहुँचाई गई शारीरिक क्षति से मृत्यु होने की संभावना थी क्योंकि अपीलार्थी घातक हथियारों से लैस थे, इसलिए हम अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि को धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता से धारा 304 भारतीय दण्ड संहिता के भाग I में परिवर्तित करने के लिए इच्छुक हैं। तदनुसार, हम अपीलार्थीगण को धारा 304 भारतीय दण्ड संहिता के भाग I के अधीन दोषसिद्ध करते हैं।

92. भारतीय दण्ड संहिता की धारा 304 के भाग I के अंतर्गत अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किए जाने के उपरांत, आगामी अवधारणीय बिंदु यह है कि उनपर किस परिमाण तक दण्ड अधिरोपित किया जाए।

93. भारतीय दण्ड संहिता की धारा 304 के भाग I के अंतर्गत, जो कोई ऐसा आपराधिक मानव वध कारित करेगा, जो हत्या की कोटि में नहीं आता है, यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु कारित की गई है, मृत्यु या ऐसी शारीरिक क्षति, जिससे मृत्यु होना संभाव्य है, कारित करने के आशय से किया जाए, तो वह आजीवन कारावास से, या दोनों में से किसी भांति के कारावास में, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

अभिलेख के अनुसार, अपीलार्थी उच्च न्यायालय और इस न्यायालय में विचारण और अपीलों के लंबित रहने के दौरान पहले ही 10 वर्ष 3 माह के कारावास का दण्ड भुगत चुके हैं।

इस न्यायालय ने दिनांक 06.01.2012 के एक आदेश द्वारा अपीलार्थीगण को इस अपील के लंबित रहने के दौरान जमानत पर रिहा कर दिया था और यह अपील 2011 से इस न्यायालय के समक्ष लंबित है।

94. ऊपर वर्णित तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, हमारा यह अभिमत है कि न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हो जाएगी यदि अपीलार्थीगण को उनके द्वारा पूर्व से ही भुगत ली गई अवधि तक दण्डित किया जाए और प्रत्येक अपीलार्थीगण पर 50,000/- रुपये का अर्थदण्ड अधिरोपित किया जाए, जो मृतक के परिवार को उसकी माँ, अर्थात् लता बाई (अ.सा.-10) के माध्यम से दिया जाएगा, अर्थदण्ड के संदाय में व्यक्तिगत दण्ड की दशा में अपीलार्थीगण को 6 (छह) माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा। यदि अपीलार्थी उपरोक्त आदेशानुसार राशि का संदाय करते हैं, तो जमानत बंधपत्र उन्मोचित समझे जाएँगे। संदाय न करने की दशा में, व्यक्तिगत दण्ड भुगतने के उपरांत जमानत बंधपत्र उन्मोचित समझे जाएँगे।

95. उपरोक्त विश्लेषण के दृष्टिगत, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

.....न्यायाधिपति

(बी. आर. गवई)

.....न्यायाधिपति

(के.वी. विश्वनाथन)

.....न्यायाधिपति

(नोंमीकापम कोटिश्वर सिंह)

नई दिल्ली:

09 जनवरी 2025

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।